रामचरितमानस
में
भक्ति
डा० सत्यनारायण शर्मा

चौथा अध्याय

मानस में भक्ति के उद्गार

"मानस में भक्ति के उद्‌गार"

भावावेश में स्वतः स्फुरित होने वाली उक्तियों को उद्‌गार कहते हैं। कवि के हृदयगत भावों के यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति ही उद्‌गारों के अध्ययन का लक्ष्य है। कोई भी कवि किसी न किसी उद्देश्य से ही किसी भी ग्रन्थ का प्रणयन करता है। कवि का किसी ग्रन्थ की रचना करने में कौन-सा उद्देश्य है, इसे पता लगाना विवेकशील पुरुषों के लिए कठिन नहीं है। उदाहरणार्थ श्रीमद्‌भगवद्‌गीता का मनोयोगपूर्वक अध्ययन करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे बिना नहीं रहते कि गीताकार भक्ति, ज्ञान एवं दर्शन का विवेचन करते हुए भी अपने प्रधान लक्ष्य कर्मयोग को कहीं भी विस्मृत नहीं करते। और हमें उनके इस उद्देश्य का पता चलता है उनके स्वाभाविक उद्‌गारों से। ये उद्‌गार गीता के श्लो० में यत्र-तत्र सूत्र में मणियों के समान गुम्फित दृष्टिगोचर होते हैं। जैसे—"हे धनंजय। आशक्ति छोड़कर और कर्म की सिद्धि हो या असिद्धि, दोनों को समान ही मानकर, योगस्थ होकर के कर्म कर; क्योंकि समता की वृत्ति को ही योग कहते हैं।"[1] अतएव योग का आश्रय ग्रहण कर कर्म करने की चतुराई को ही योग कहते हैं।[2] नियत कर्म को तू कर, क्योंकि कर्म करने की अपेक्षा कर्म करना ही कहीं अधिक अच्छा है। इसके अतिरिक्त यदि तू कर्म न करेगा तो तेरा शरीर निर्वाह तक न हो सकेगा।[3] इसलिए आसक्ति छोड़कर अपना कर्तव्य-कर्म सदैव किया कर।[4] यदि मैं कर्म न करूँ तो ये सारे लोक नष्ट हो जायेंगे।[5] हे अर्जुन, आशा एवं ममता छोड़कर तू निश्चित होकर युद्ध कर।[6] इसलिए पूर्व के लोगों के किये हुए अति प्राचीन कर्म को ही तू कर।[7] हे धनंजय ! उस आत्मज्ञानी पुरुष को कर्मबद्ध नहीं कर सकते जिसने योग के आश्रय से कर्म त्याग दिये हैं।[8] सब प्राणियों की आत्मा ही जिसकी आत्मा हो गयी वह सब कर्म करता हुआ भी अलिप्त रहता है।[9] जो ब्रह्म में अर्पण कर आसक्ति-रहित कर्म करता है, उसको

---

१ श्रीमद्‌भगवद्‌गीता, अ० २, श्लो० ४८
२ गीता, २/५० (उ०)
३ गीता, ३/७–८
४ गीता, ३/१९ (पू०)
५ गीता, ३ २४ (पू०)
६ वही, ३/३० (उ०)
७ वही, ४/१५ (उ०)
८ वही, ४/४१ (उ०)
९ वही, ५/ ७ (उ०)

वैसे ही पाप नहीं लगता जैसे कमल के पत्ते को पानी नहीं लगता ।[1] कर्मयोगी ऐसी अहंकार बुद्धि न रख कर कि "मैं कर्म करता हूँ" केवल शरीर से, केवल मन से, केवल बुद्धि से और केवल इन्द्रियों से भी आसक्ति छोड़कर आत्मशुद्धि के लिए कर्म किया करते हैं ।[2] हे अर्जुन ! अतएव तू उठ, यश प्राप्त कर और शत्रुओं को जीतकर समृद्ध राज्य का उपयोग कर। मैंने इन राजाओं को पहले ही मार डाला है । हे सव्यसाच ! तू केवल निमित्त मात्र बन। मैं द्रोण, भीष्म, जयद्रथ और कर्ण ऐसे ही अन्य वीरों को पहले ही मार चुका हूं । घबड़ाना नहीं, युद्ध कर तू युद्ध में शत्रुओं को जीतेगा ।[3] मेरे लिए कर्म करने से भी तू सिद्धि पावेगा ।[4] शास्त्रों में जो कुछ कहा गया है, उसे समझकर तुझे कर्म करना उचित है ।[5] हे अर्जुन ! यज्ञ, दान और तप जैसे कर्म न छोड़ना चाहिए । यह मेरा निश्चित और उत्तम मत है ।[6] हे कौन्तेय ! अपने स्वभावजन्य कर्म से बद्ध होने के कारण मोह के वश होकर तू जिसे न करने की इच्छा करता है; विवश होकर तुझे वही करना पड़ेगा ।"[7]

गीता में भगवान् कृष्ण के ये तथा इनके जैसे अनन्य उद्गार यह प्रमाणित करते हैं कि गीताकार का लक्ष्य मोहवश कर्त्तव्य से परांमुख होने को तत्पर अर्जुन को कर्मयोग में कटिबद्ध करने के निमित्त व्यक्त किये गये हैं । इससे यह सिद्ध होता है कि गीताकार का प्रधान लक्ष्य ज्ञान-भक्ति युक्त कर्मयोग ही है । उपर्युक्त उदाहरणों से यह पूर्णतः स्पष्ट है कि महान् ग्रन्थकार अपनी रचना में अपने मूल लक्ष्य को प्रकरणानुसार अभिव्यक्त करने का प्रयत्न करते हैं और उनसे हम उनके प्रधान उद्देश्य से अवगत हो पाते हैं ।

गोस्वामी तुलसीदास जी का "रामचरितमानस" भी "श्रीमद्भगवद्गीता" के समान ही एक महान् ग्रन्थ है । इसमें भी गोस्वामी जी ने अपने महान् लक्ष्य को गीताकार ने ग्रंथ के प्रारम्भ में अर्जुन के हृदय में कर्मअकर्म का संशय उत्पन्न होने पर भगवान् श्रीकृष्ण के मुख से उसका विवेचन कराया है, उसी प्रकार मानसकार ने मानस के बालकांड प्रारम्भ में ही, राम दशरथ के पुत्र हैं, अथवा कोई अन्य, इस प्रकार का संशय भरद्वाज ऋषि के हृदय में उत्पन्न कराकर याज्ञवल्क्य के मुख से उसके विवेचन का सूत्रपात्र कराया है ।[8] याज्ञवल्क्य ने इस प्रकार का सन्देह पार्वती के हृदय में भी उत्पन्न होने की चर्चा की है[9] और उसे संदेह के निवारणार्थ शिव के मुख से समग्र रामचरित का वर्णन करना बतलाया है ।[10]

---

१ वही, ५/१०
२ गीता ५/११
३ गीता ११।३३,३४
४ गीता १२।१०
५ वही, १६।२४
६ गीता, १८।५–६
७ गीता, १८।६०
८ मा० १.४६.६–१.४६
९ मा० १.१०८.१–१.१०८
१० मा० १.१२०(ख), (ग) और (घ)

केवल इतना ही नहीं शिव के मुख से याज्ञवल्क्य ने यह कहलाया है कि ठीक ऐसा ही मोह गरुड़ को भी उत्पन्न हुआ था जिसके निवारण के लिए उसे काकभुशुण्डि की शरण लेनी पड़ी थी।[१] जहाँ गीता में केवल अर्जुन के मोह की ही चर्चा है और उसके निवारण कर्त्ता केवल भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं वहाँ मानस में भरद्वाज, पार्वती एवं गरुड़ जैसे तीन-तीन मोहग्रस्त व्यक्तियों के क्रमशः याज्ञवल्क्य, शिव एवं काकभुशुण्डि जैसे तीन-तीन महान् राम भक्त समाधानकर्त्ता हैं। इससे स्पष्ट है कि गीता वर्णित मोह से मानस वर्णित मोह अधिक प्रगाढ़ और व्यापक है। यथार्थ में जहाँ गीता का मोह कर्म-अकर्म का मोह है वहाँ "मानस" का मोह समग्र सृष्टि के मूल तत्त्व भगवान् राम के स्वरूप का है। अतः इसकी गम्भीरता स्पष्ट है। तुलसी के समय से पूर्व एवं उनके समय में भी जो निर्गुणवादी सन्त मत का प्रसार था या उसके अतिरिक्त जो अनन्य कल्पित पंथ विद्यमान थे उनके आचार्यों ने "राम केवल निर्गुण हैं, सगुण नहीं" या "राम का अस्तित्व ही नहीं है" इस प्रकार का मोह व्यापक रूप में फैला रखा था। हमारी समझ में तुलसी का "रामचरितमानस" इसी घोर एवं व्यापक मोह का निराकरण करने के लिए लिखा था। इसीलिए मानस में एक परब्रह्म के अस्तित्व तथा उसके निर्गुण-सगुण स्वरूप पर भक्तों के भावुक हृदयों में आस्था जमाने के लिए इसके कथा प्रसंग में स्थल-स्थल पर प्रभावोत्पादक रूप में भक्ति के उद्गारों की अभिव्यक्ति हुई है। हमारी दृष्टि में जिस प्रकार गीता ज्ञान एवं भक्ति के विवेचन से युक्त होकर भी एक कर्मयोग शस्त्र है, उसी प्रकार "रामचरितमानस" कर्म एवं ज्ञान के विवेचन से युक्त होकर भी एक अलौकिक भक्ति योग शास्त्र है। इस तथ्य को समझने के लिए हमें मनोयोगपूर्वक अध्ययन करना होगा, महात्मा तुलसीदास जी के मानसस्थ उद्गारों का। अतः यहाँ "मानस" के प्रत्येक काण्ड से अनेकानेक भक्तिपूर्ण उद्गारों को उद्धृत कर तुलसी के प्रधान लक्ष्य-भक्ति का विवेचन किया जा रहा है अन्यथा इसके अभाव में "मानस" की भक्ति का समुचित अध्ययन अपूर्ण ही रह जायेगा।

बाल-काण्ड

बाल-काण्ड के छठे श्लोक के उत्तरार्ध में ही तुलसी ने भगवान् के चरणों को भव-सागर तरने की इच्छा रखने वालों के लिए नौका बतलाकर उन्हें नमस्कार किया है।[२] आगे चलकर रामनाम की महिमा बतलाते हुए उन्होंने चार युगों, तीनों कालों और तीनों लोकों में भगवान् के नाम जप के प्रभाव से प्राणियों के शोकहीन होने का उल्लेख किया है। उनको दृढ़ विश्वास है कि वेद पुराण एवं संतों का मत यही है कि राम का प्रेम मनुष्यों के सारे पुण्यों का फल है।[३]

---

१ मा० ७.५८.२–७.६४.२

२ मा० १ श्लो० ६ (पू०)

३ मा० १·२७·१–२—"चहुँ युग तीनि काल तिहुँ लोका। भए नाम जप जीव बिसोका॥
वेद पुरान संत मत एहू। सकल सुकृत फल रामसनेहू॥

"रामचरितमानस" के सरोवर में अवगाहन करने में आने वाले विघ्नों का उल्लेख करते हुए[1] तुलसी अपना यह विश्वास व्यक्त करते हैं कि भगवान् राम के कृपा-कटाक्ष से भक्तों के सारे विघ्न दूर हो जाते हैं।[2]

पार्वती के इस प्रश्न पर कि राम दशरथ के पुत्र हैं या परब्रह्म; शिव का कथन है कि हे पार्वती ! अपने प्रश्न से तुमने उस रामकथा की ओर संकेत किया जो समस्त लोकों को पवित्र करने वाली गंगा के तुल्य है।[3] यथार्थ में रामकथा श्रवण नहीं करने वालों के कान सांपों के बिल के समान हैं।[4] भगवद्भक्ति न करने वाले प्राणी जीवित ही मृतक के समान हैं। राम का गुणगान न करने वालों की जिह्वा मेढ़कों की जिह्वा के समान है। जो छाती रामचरित सुनकर आह्लादित नहीं हो जाती वह वज्र के तुल्य कठोर और निष्ठुर है।[5] राम की लीला देवताओं का हित करने वाली तथा दनुजों को मोह में डालने वाली है। वह कामधेनु के समान एवं सेवा करने से सब सुख देने वाली है।[6] वह ताली की ध्वनि के समान सन्देह रूपी पक्षियों को उड़ाने वाली है तथा कलि-विटप के लिए कुठार है।[7]

कामदेव की माया का नारद के ऊपर कोई प्रभाव न पड़ने का कारण बतलाते हुए तुलसी कहते हैं कि जिसके बड़े रक्षक स्वयं राम हैं उसकी सीमा पर कौन अधिकार कर सकता है।[8] अर्थात् भगवान् के भक्त आधिदैविक, आधिभौतिक एवं मानसिक संतापों से अपना परित्राण पाने के लिए भगवान की शरण में जाकर निश्चित रहते हैं। इसी प्रसंग में तुलसी यह भी कहते हैं कि राम जो करना चाहते हैं वही होता है, उसको अन्यथा करने वाला संसार में कोई है ही नहीं।[9]

सुखों के समूह तथा मोह, ज्ञान, वाणी एवं इन्द्रियों के परे रहने वाले राम को दशरथ-कौशल्या के प्रेम के कारण बाल-क्रीड़ा करते हुए देखकर तुलसी का हृदय आह्लादित एवं पुलकित हो उठता है।[10] वे कहते हैं कि दशरथ और कौशल्या की तरह तो वे ही अलौकिक आनन्द पा सकते हैं जो राम के चरणों में पराभक्ति करते हैं। तात्पर्य यह है कि

---

१ मा० १·३८·३—१·३९·४
२ मा० १·३९·५—"सकल विघ्न व्यापहिं नहिं तेही। राम सुकृपाँ बिलोकहिं जेही॥"
३ मा० १·११२·७
४ मा० १·१३·२
५ मा० १·११३·५–७
"जिन्हें हरि भगति हृदय नहिं आनी। जीवत सब समान तेइ पानी॥"
६ मा० १·११३·८-१—११३·५
जो नहिं करइ राम गुन गाना। जीह सो दादर जीह समाना॥
कुलिस कठोर निठुर सोइ छाती। सुनि हरि चरित न जो हरषाती॥
७ मा० १·११४·१–२ (पू०)
८ मा० १·१२६·८
९ मा० १·१२८·१
१० मा० १·१९९

पूर्व जन्म में मनु-शतरूपा ने भगवच्चरणों की अनन्य भक्ति की थी। इसीसे आज दशरथ-कौशल्या रूप में अवतीर्ण होने पर भगवान् उन्हें बालचरित का प्रत्यक्ष आनन्द प्रदान कर रहे हैं। इसी तरह जो कोई भी भगवान् की अनन्य भक्ति करेगा उसको भी ऐसा ही मनोवांछित सुख प्रदान करेंगे। सच पूछिये तो राम से विमुख होने पर कोई यज्ञ, ज्ञान, जप, तप आदि करोड़ों यत्न करने के बावजूद, भव-बन्धन से मुक्त नहीं हो सकता। कारण यह है कि जिस माया ने सारे चराचर प्राणियों को वशीभूत कर रखा है, वह सदा भगवान् से भयभीत रहती है। जिस भगवान् के भृकुटी-विलास से वह नृत्य करती रहती है उस प्रभु को छोड़कर किसकी भक्ति की जाय? यदि मन-कर्म-बचन से निश्छल होकर उनका भजन किया जाय तो वे शीघ्र ही द्रवित हो जाते हैं।[1] ऐसे भगवान् में जिसका मन अनुरक्त नहीं हुआ, उन्हें मानों विधाता ने वंचित कर दिया।[2]

पातिव्रत्य से च्युत प्रस्तरवत् निर्जीव अहल्या को सजीव एवं सानन्द करके पतिलोक में प्रेषित करने वाले अकारण दीनबन्धु अपने आराध्य राम का, स्मरण कर तुलसी आह्लादमग्न हो उठते हैं और उनके हृदय से सहसा यह प्रबल वासना उद्भूत हो जाती है कि वे निश्छल होकर उनकी (परब्रह्म राम की) सेवा में संलग्न रहें।[3]

विवाह के बाद सीता जी को विदा कराने के लिए जाते हुए सबन्धु राम के दर्शन के लिए नगर के नारी-नर दौड़ पड़ते हैं। यह प्रसंग सामान्य पुत्री और जामाता की विदाई के समय भी अत्यन्त करुणापूर्ण है। किन्तु यह तो विशेष अवसर है जब जगदात्मा भगवान् राम और उनकी आदि शक्ति जनकपुर निवासियों के मन और नेत्र को तृप्त कर उनके नेत्रों से आज अन्तर्हित हो रहे हैं। ऐसी परिस्थिति में भावुक एवं भक्त कवि तुलसी ने उनके आन्तरिक भावोद्गारों को बड़े मार्मिक स्वरूप में व्यक्त किया है। एक का दूसरे के प्रति कथन है कि सखी ये चारों राजकुमार हमारे प्रिय पाहुने हैं। अपने जी भर इनके सौन्दर्य का दर्शन तो कर लो। सयानी! कौन जाने किस पुण्य से विधाता ने इन्हें हमारे नेत्रों के अतिथि बनाये हैं। हाँ, इनके दर्शन तो हमारे लिए उतने ही आनन्ददायक हैं, जैसे मरणासन्न को अमृत की प्राप्ति, जन्म-जन्म के भूखे को कल्पवृक्ष का लाभ, और नारकी को हरिपद-प्राप्ति। राम के सौन्दर्य को देखकर उसे हृदय में धारण कर लो, अपने हृदय को "फनि" बनाकर इनके मनोहर रूप को "मनि" बना डालो।[4] यहाँ कवि ने नगर निवासियों की रूप लालसा का वर्णन कर अपने आराध्य के दर्शन की उत्कट पिपासा अभिव्यक्त की है। प्रेम

---

१ मा० १·२००२–६

२ मा० १·२०४·२—"जिन्ह कर मन इन्ह सन नहिं राता।
ते जन बंचित किये बिधाता॥"

३ मा० १·२११—
"अस प्रभु दीन बन्धु हरि कारन रहित दयाल।
तुलसिदास सठ तेहि भजु छाड़ि कपट जंजाल॥"

४ मा० १·३३५·३–७

का विशेषत: भगवद्रूप की पिपासा का यह अलौकिक उद्गार बड़ा ही मर्मस्पर्शी एवं रमणीय है।

राम को विदा देते हुए परम ज्ञानी जनक भी प्रेमोन्मत्त हो उठते हैं और कहते हैं कि मेरा अहोभाग्य है जो सभी सुखों के मूल आपके दर्शन हुए। सच है, भगवान् के अनुकूल होने पर ही संसार में जीव को सारे लाभ मिलते हैं।[1]

भक्त का हृदय आराध्य की शक्तिमत्ता, शीलवत्ता, उच्चता एवं पवित्रता से अभिभूत होकर उसकी चर्चा मात्र में अपने मन और वाणी को पवित्र करने की शक्ति का अनुभव करता है : अत: तुलसी यहाँ आनन्द-विह्वल होकर रामचरित्र वर्णन का कारण अपनी वाणी को पवित्र बनाना ही मान लेते हैं। वस्तुत: प्रेम की पावनता, मन, कर्म और वचन सब को पवित्र बना देती है, न कि वाणी को। आह्लाद के आवेश में तुलसी इतने आत्म विभोर हो गये हैं कि अपनी वाणी की पवित्रता से ही वे सन्तुष्ट हो जाते हैं।[2]

"अयोध्या-काण्ड"

एक ही प्रसंग भिन्न-भिन्न दृष्टियों से भिन्न-भिन्न रस का रूप धारण कर लेता है। इस तथ्य की पुष्टि कोप-भवन में कैकेयी के पास पड़े हुए राजा दशरथ के समक्ष रामागमन प्रकरण से होती है। इस प्रसंग में दशरथ ने राम के प्रति जो अलौकिक प्रेम प्रकट किया है वह वात्सल्य रस ही समझा जाता यदि दशरथ परम भक्त महाराज मनु के अवतार न होते और भगवान से उनके चरणों में पुत्र विषयक प्रेम होने का वरदान न माँग चुके होते। महाराजा दशरथ का प्रेम कितना गहरा है इससे अवगत होने के लिए उनकी मानसिक स्थिति का पूर्ण अध्ययन अपेक्षित है। कैकेयी की कुचाल और निष्ठुरता की चोट से महाराज दशरथ विकल होकर तड़प रहे थे। यहाँ तक कि वे अपनी घोर हार्दिक व्यथा से मर्माहित होकर अचेत भी हो चुके थे। किन्तु वहाँ राम का आगमन सुनकर उनके हृदय में धैर्य का संचार हो जाता है और आँखें खुल जाती हैं। राम वियोग की असहय संभावना से उनके अंग शक्तिहीन हो चुके थे। इसलिए सुमंत बहुत संभाल कर उन्हें बैठाते हैं। राजा दशरथ की प्यासी दृष्टि अपने चरणों पर गिरते हुए राम की ओर केन्द्रित हो जाती है और वे राम को उसी प्रकार ललक कर हृदय में लगा लेते हैं जैसे कोई मणिधर सर्प अपनी खोयी हुई मणि आतुरता पूर्वक ग्रहण कर लेता है। वे नि: शब्द एवं निस्पंद होकर राम को देख रहे हैं और आँखों से अविरल अश्रुधाराएँ प्रवाहित हो रही हैं। राम के भावी वियोग की आशंका से वे बोलने में असमर्थ हैं, किन्तु प्रखर प्रेम के आवेग में विह्वल होकर राम को बार-बार हृदय से चिपका लेते हैं।[3] पर राजा को सत्य पर भी अलौकिक प्रेम है। वे सत्य

---

१ मा० १·३४१—

"नयन विषय मो कहुँ भयउ सो समस्त सुख मूल।
सबइ लाभु जग जीव कहँ भएँ ईसु अनुकूल :।"

२ मा० १·३६१·६

३ मा० २·४४. १—५

का परित्याग करने की बात भी नहीं सोचते । वें विधाता से बार-बार निवेदन कर रहे हैं । कि रामचंद्र जंगल में न जायँ । वे आशुतोष भगवान शंकर से प्रार्थना कर रहे हैं कि राम शील एवं स्नेह को त्याग कर मेरी आज्ञा का उल्लंघन कर घर पर ही रह जायँ । प्रेम का वेग क्रमशः बढ़ता चला जा रहा है और राजा के विवेक पर आधिपत्य कर लेता है । अतः अब वे सोचने लगते हैं कि अपयश हो तो हो, सुयश भी नष्ट हो जाय तो हो जाय, देवलोक भी उन्हें प्राप्त हो या न हो बल्कि उन्हें नरक की ही भयंकर यातना क्यों न भुगतनी पड़े, संसार के सब असह्य दुख उन्हें सहने पड़ें तो पड़ें पर उनके प्यारे राम उनकी आँखों से ओझल न हों ।[1] सत्य और प्रेम दोनों के सफल निर्वाह का यह आलौकिक क्रम राजा दशरथ को ही भली भांति मालूम था । सत्य उनको प्राणों से भी बढ़कर प्रिय था किन्तु राम प्रेम के समक्ष उन्हें उसे भी क्षण भर के लिए भूल जाना पड़ा । ऐसी आलौकिक भक्ति के आश्रय महाराज दशरथ अनंत काल तक प्रथम श्रेणी के भक्तों में परिगणित होते रहेंगे ।

तुलसीदास जी राम के प्रति दशरथ के प्रेम की गम्भीरता प्रदर्शित कर यहाँ उनकी महारानी सुमित्रा के अनन्य प्रेम का परिचय दे रहे हैं । वे अपने प्राण प्यारे पुत्र लक्ष्मण को राम-सीता की सेवा के लिए वन में भेजती हुई अपने हृदय के उद्‌गारों को यों व्यक्त करती हैं । राम हृदय और प्राणों के प्यारे हैं और समग्र जगत के प्राणियों के निः-स्वार्थ सखा हैं । संसार में जितने पूज्य और प्रिय हैं, वे सब राम के संबंध से ही वैसे हुए हैं । हे पुत्र ! इस तथ्य को हृदयंगम कर राम के साथ जंगल में जाओ और उनकी सेवा कर जीवन सफल करो । हे पुत्र ! मैं तुम्हारी बलैया लेती हूँ । मैं और तुम दोनों ही बड़े भाग्य-भाजन हुए यदि तुम्हारा मन निष्कपट होकर राम के चरणों में रम गया ।[2] अहा ! यथार्थ पुत्रवती वही युवती है जिसका पुत्र राम का भक्त हो । यदि किसी माता का पुत्र राम की भक्ति से परांमुख हुआ तो उसे अपना हित समझना व्यर्थ है । उससे तो उसकी माता का बन्ध्या रहना ही अच्छा था । हाय ! उसने पुत्र प्रसव का कष्ट व्यर्थ ही सहा ।[3] हे पुत्र ! राम के चरणों में प्रेम करना सारे पुण्यों का महान् फल है ।[4] सुमित्रा के ये उद्‌गार उनके हृदय की निश्छलता, निर्मलता एवं राम भक्ति की विह्वलता के निर्मल आदर्श हैं ।

शृङ्गबेरपुर में गंगा के तट पर निषाद-लक्ष्मण-संवाद में तुलसी ने राम प्रेम की पराकाष्ठा व्यक्त की है । लक्ष्मण निषादराज गुह से कहते हैं कि मन, कर्म और वाणी से राम के चरणों में प्रेम रखना ही मनुष्य का परम परमार्थ है ।[5] राम यथार्थ में परमार्थ-

---

१ मा० २.४४,६—२.४५.२

२ मा० २.७४.६

३ मा० २.७५.२—२—"पुत्रवती जुवती जग सोई । रघुपति भगतु जासु सुत होई ।।
न तरु बांझ भलि बादि बिआनी । राम बिमुख सुत तें हित जानी ।।"

४ २.७५.४—"सकल सुकृत कर बड़ फल एहू ।
राम सीय पद सहज सनेहू ।।"

५ मा० २.९३.६—"सखा परम परमारथु एहू ।
मन क्रम बचन राम पद नेहू ।।"

स्वरूप, अविज्ञेय, अलक्ष्य, अनादि एवं अनुपम ब्रह्म हैं। वे सर्वथा निर्विकार हैं और वेद प्रतिदिन नेति-नेति कहकर उनका निरूपण करते हैं। भक्त, भूमि, भूसुर, सुरभि एवं सुरों के कल्याण के लिए वह कृपालु भगवान मानव शरीर धारण कर नर-लीला करते हैं जिनका चरित सुनकर भव-पाश कट जाता है। भगवान को ऐसा समझकर मोह छोड़ो और सीता-राम के चरणों में अनुरक्त हो जाओ।[1] लक्ष्मण के इस उद्‌गार में रामभक्ति की उत्कट प्रेरणा तो है ही किन्तु तुलसी के सारे प्रमुख सिद्धांत भी जहाँ मुखरित हो उठे हैं और वे ये हैं—

१. राम वेद वर्णित निर्विकार परमार्थ स्वरूप अलक्ष्य एवं अनादि ब्रह्म हैं।
२. कृपालु होने के कारण वे सगुण भी हैं।
३. भक्त, ब्राह्मण, गौ इत्यादि के लिए वे नर शरीर धारण करते हैं।
४. उनके नर चरित्र को सुनकर मनुष्यों के भव-पाश कट जाते हैं।

महर्षि भरद्वाज ने अपने पावन आश्रम में भगवान् रामचन्द्र का स्वागत करते हुए कहा कि छल छोड़कर कर्म, वचन और मन से जब तक आपका भक्त नहीं हो जाता तब तक करोड़ों उपाय करने पर भी उसे स्वप्न में भी सुख नहीं मिलता। भरद्वाज के मुख से यहां तुलसी ने अपने हृदय के अविचल विश्वास को प्रकट कराया है।[2]

राम-वन-गमन प्रसंग में तुलसी ने अपनी भक्ति-भावना जी भर व्यक्त की है। यह सारा प्रसंग प्रेम की चरम परिणित का अद्‌भुत नमूना है। तुलसीदास मानस के वक्ताओं के मुख से कहलाते हैं कि अहोभाग्य है, उन नगरों और गांवों का; जो राम के वन-मार्ग में बसे हुए हैं। पाताल और स्वर्ग के नगर भी उनके भाग्य की प्रचुरता पर सिहाते हैं। वे कहते हैं कि ये गांव और नगर धन्य हैं, पुण्णमय हैं और परम सुन्दर हैं। न मालूम किस पुण्यात्मा ने किस पुण्यवेला में इन्हें यहां बसाया था। जहां जहां भगवान् राम के चरण चले जाते हैं, उनके सामने तो इन्द्र की पुरी अमरावती भी अत्यंत तुच्छ है। राम के वनमार्ग के निकटवर्ती निवासियों की प्रशंसा देवगण भी करते हैं और उन्हें पुण्य की राशि समझते हैं। जो लोग सीता, लक्ष्मण के साथ राम का दर्शन कर लेते हैं देवगण उनकी भी सराहना करते हैं। जिन तालाबों और नदियों में राम स्नान कर लेते हैं, उन्हें स्वर्ग के तालाब और नदियां भी सराहती हैं। जिन वृक्षों के तले राम बैठ लेते हैं, उनकी बढ़ाई कल्पवृक्ष भी करता है। राम के चरण कमलों की धूल का स्पर्श कर पृथ्वी भी अपने को परम सौभाग्यवती मानती है। मेघ राम पर छाया करते चलते हैं और देवगण पुष्प-वृष्टि करते हुए सिहाते हैं। मार्ग के पर्वतों, बनों, पक्षियों एवं पशुओं का अवलोकन करते हुए राम बन-मार्ग में अग्रसर होते जा रहे हैं।[3] कवि ने यहां अपना हृदय खोल रखा है। मानस का प्रत्येक पाठक अना-

---

१ मा० २.६३.७—२.६४.१

२ मा० २.१०७—"करम वचन मन छाड़ि छलु जब लगि जनु न तुम्हार।
तब लगि सुखु सपनेहुँ नहीं किएँ कोटि उपचार॥"

३ मा० २.११२.१—२.११३

यास ही तुलसी के राम-प्रेम की महिमा को अवगत कर लेता है। राम के संबन्ध से इस बन मार्ग के गांव, नगर, नदी, तालाब, नर एवं नारी सभी महिमा मण्डित एवं देव पूज्य हो जाते हैं। सारी प्रकृति राम में पुलकित हृदय से अनुरक्त दृष्टिगोचर होती है। उनके चरण स्पर्श से पृथ्वी भी अपना अहोभाग्य समझती है। जड़ मेघ से चेतन देवता तक भी राम की सेवा में सानंद संलग्न हो जाते हैं। भक्ति की प्रबल प्रेरणा प्रदान करने वाली ऐसी एकान्त रमणीय पंक्तियां मानस में भी सर्वत्र सुलभ नहीं हैं।

ऊपर जो कुछ कहा गया है उसमें राम के संबन्ध का माहात्म्य है किन्तु आगे चलकर तुलसी ने राम के अनुपम सौन्दर्य और भक्तों के हृदय को मुग्ध करने की शक्ति का भी मार्मिक अभिव्यंजन किया है। उनका कथन है कि राम के सौन्दर्य का साक्षात्कार कर खग और मृग सभी मुग्ध हो जाते हैं। पथिक राम ने सब के चित्त चुरा लिए हैं। सीता लक्ष्मण सहित राम की यह पावन झांकी जिन-जिन लोगों को मिल-मिल चुकी है उन-उन लोगों को संसार पार करने का मार्ग अनायास एवं आनन्दपूर्वक समाप्त हो जाता है : आज भी लक्ष्मण, सीता और राम इस पथिक रूप में स्वप्न में भी यदि किसी के हृदय में बस जायँ तो राम-धाम का वह मार्ग जो कभी किसी मुनि को भी, कदाचित ही मिलता है, उसे अनायास ही प्राप्त हो जायेगा।[1] तात्पर्य यह है कि राम, लक्ष्मण और सीता का सौन्दर्य इतना रमणीय और पावन है कि उसकी झलक हृदय में आते ही मनुष्य वैकुण्ठ जाने का अधिकारी बन जाता है।

अयोध्या काण्ड का किरात-राम-संवाद प्रसंग राम की कृपालुता एवं भक्त की महत्ता का अद्भुत निदर्शन है। जो रामचन्द्र वेद की वाणी एवं मुनियों के मन के लिए भी अगम्य है, वे दया के धाम बन के किरातों के बचन इस प्रकार आदर के साथ सुनते हैं जिस प्रकार पिता अपने पुत्र की वाणी सुनता है। कवि इस मधुर प्रसंग की ओर संकेत करते हुए तार स्वर से उद्घोष करता है कि जिनको समझ है, वे समझ लें कि राम को केवल प्रेम ही प्यारा है।[2] भक्ति का इतना शक्तिशाली और स्पष्ट उद्गार कवि के स्नेहाधिक्य का द्योतक है।

दशरथ, सुमित्रा और लक्ष्मण के अपार प्रेम की महिमा पहले ही दिखलाई जा चुकी है। जब गुरु वशिष्ठ, माताएं, मन्त्रिगण एवं प्रजाजन भरत से राम की अनुपस्थिति में अयोध्या का राज्य भार ग्रहण करने का आग्रह करते हैं तो त्याग मूर्ति भरत का भी अगाध राम-प्रेम-सुधा-स्रोतस्विनी के समान फूट पड़ता है। वे कह उठते हैं कि हमारा वास्तविक हित तो सीतापति की सेवा में था पर उसको तो माता की कुटिलता ने हर लिया। अब मैं जब विचार कर देखता हूँ तो किसी दूसरे उपाय से मेरा भला होता नहीं दिखाई देता। राम, लक्ष्मण और सीता के चरणों के दर्शन के बिना शोक-समाज के तुल्य यह राज्य किसी गिनती में है ? यदि शरीर पर वस्त्र नहीं तो आभूषणों का भार व्यर्थ है। यदि वैराग्य नहीं

१: मा० १.२३.८—२.१२४.२

२: मा० २.१३६—२.१३७.१

नहीं तो जप और योग व्यर्थ है : बिना जीव के देह भी निरर्थक है। इसी प्रकार राम के बिना मेरे लिए सब कुछ व्यर्थ है।[1] जिस राज्य के लिए बड़े-बड़े राजकुमार अपने पिता-माता की हत्या तक करने से भी नहीं चूकते, भरत को वह समृद्ध राज्य अनायास प्राप्त हो चुका है, किन्तु वे उसको धूल से भी तुच्छ समझकर राम के चरणों के दर्शन के लिए लालायित है। प्रेम का मूर्तिमान स्वरूप यदि विश्व-साहित्य में देखना हो और यदि त्याग की सात्विकता की अनुभूति करनी हो तो तुलसी के मानस के इस प्रसंग को देखें और बादि मोर सबु बिनु रघुराई[2] की अनन्यता और गम्भीरता को हृदयंगम करें।

चित्रकूट में राम से मिलने के लिए चलते हुए भारत जिस किसी को अयोध्या में घर की रखवाली के लिए रखना चाहते हैं वह यह समझता है कि मानों उसकी गरदन ही मारी गयी। कोई कोई तो किसी को भी रखवाली करने के लिए रखने के पक्ष में है ही नहीं। उनकी दृष्टि में अपने जीवन का लाभ अर्थात् भगवान् राम का दर्शन, कौन नहीं लेना चाहता ?[3] उनकी दृष्टि में वह सम्पत्ति, घर, सुख, सुहृद, माता, पिता और भाई जल जायं तो अच्छा है जो रामचन्द्र के चरणों के समक्ष उपस्थित होने में सहर्ष सहायता न करें[4]। राम-प्रेम के समक्ष सम्पत्ति, घर, सुख, सुहृद माता-पिता और भ्राता की तुच्छता प्रदर्शित कराकर कवि ने अपनी भक्ति की अनन्यता का अद्भुत प्रमाण अन्यत्र भी प्रस्तुत किया है।[5]

राम भक्ति का अद्भुत उद्गार चित्रकूट जाते हुए भरत के गंगा तीर पर पहुँचने पर निषादराज गुह्य के मुंह से निकलता है वह सोचता है कि एकाकी राम को बन में मारकर भरत निष्कटंक राज्य करने के लोभ से चित्रकूट जा रहे हैं। ऐसी परिस्थिति में वह उन्हें गंगा पार होने देना नहीं चाहता और भक्ति के आवेश में अपना प्राण न्यौछावर करके भी अपना अभीष्ट सिद्ध करना चाहता है। उसके मुँह से सहसा निकल पड़ता है कि सज्जनों के समाज में जिसकी गणना नहीं, और जो राम के भक्तों में नहीं परिगणित होता वह नष्ट हो जाय तो अच्छा, क्योंकि उसका जीवन ही पृथ्वी के लिए भार स्वरूप है। वह अपनी माता के यौवन रूपी वृक्ष के लिए कुठारतुल्य है।[6] यहाँ अभक्तों के लिए जननी "जोबन बिटप कुठारू" शब्द में बड़ी घोर भर्त्सना भरी हुई है। इससे तुलसी के भक्त हृदय का परिचय निषादराज के शब्दों में दिया गया है।

१: मा० २.१७८.१—६
२. मा० ३.१७८.६ (उ०)
३. मा० २.१८५.६—७
४. मा० २.१८५—"जरउ सों संपति सदन सुखु सुहृद मातु पितु भाइ।
सनमुख होत जो राम पद करै न सहस सहाइ।"
५. विनयपत्रिका, पद १७४; कवितावली, उत्तर काण्ड, पद ४१
६ मा० २.१९०. ७—८ "साधु समाज न जाकर लेखा। राम भगत महुँ जासु न रेखा।
जायँ जिअत जग सो महि भारू। जननी जोबन बिटप कुठारू॥"

राम-नाम की अपूर्व महिमा का परिचय तुलसी ने भरत-निषाद मिलन प्रसंग में प्रकट किया है। देवगण भरत और निषादराज गुह का मिलन देखकर उस निषाद के सौभाग्य की प्रभूत प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि यह निषाद जो वेद और लोक दोनों की दृष्टि में अति नीचा है और जिसकी छाया छू जाने से भी मनुष्य स्नान करके ही शुद्ध होता है उसको रामचन्द्र जी का यह छोटा भाई भरत हृदय से लगाकर रोमांचित होते हुए मिलता है।[1] इससे राम नाम की महिमा प्रकट होती है। यथार्थ में राम-नाम की महिमा इतनी विशाल है कि चाण्डाल, शबर, खस, यवन एवं पामर कोल-किरात भी राम शब्द का उच्चारण करते ही परमपावन एवं विश्व विख्यात हो जाते।[2] भगवान् राम के संसर्ग एवं सौन्दर्य की महिमा के प्रतिपादन के पश्चात् यहां उनके नाम की महिमा की जोरदार शब्दों में घोषणा की गयी है।

भगवान् रामचन्द्र को अयोध्या लौटा लाने के विचार से चित्रकूट जाते हुए भरत त्रिवेणी के पास पहुँच कर उनसे करबद्ध राम भक्ति की शिक्षा माँगते हुए कहते हैं कि हे तीर्थराज ! आप सभी कामनाओं के दाता हैं। आपका यह प्रभाव लोक एवं वेद दोनों ही में प्रकट है। यद्यपि मैं क्षत्रिय हूँ और भिक्षा माँगना मेरा धर्म नहीं है पर फिर भी मैं अपना धर्म त्याग कर आपके समक्ष भिक्षुक बन रहा हूँ। कारण यह है कि मैं इस समय आर्त्त हूँ और आर्त्त कौन से कुकर्म नहीं करते ? इसलिए हे सुजान, हे सुदानी ! मुख याचक की प्रार्थना सफल करें।[3] मुझमें अर्थ, धर्म या काम किसी की भी रुचि नहीं है। मैं निर्माण पद की प्राप्ति भी नहीं चाहता। बस मैं जन्म-जन्म राम के चरणों में प्रेम चाहता हूँ। बस मुझे यही वरदान चाहिए अन्य नहीं। मुझे राम कुटिल समझें तो समझें, लोग गुरु और स्वामी का द्रोही मानें किन्तु आपकी कृपा से सीता-राम के चरणों में मेरा प्रेम प्रतिदिन बढ़ता जाय। मेघ जन्म भर चातक की स्मृति भुला दें तो भुला दें, उसके जल माँगने पर पत्थर और बज्र डाले पर चातक की रटन घटने से उसकी मर्यादा घट जायगी। हर हालत में प्रेम बढ़ने से ही उसकी भलाई है। जैसे तपाने से सोने की कान्ति बढ़ती है, वैसे ही अपने प्यारे आराध्य के चरणों में प्रेम का नियम निबाहने से ही आराधक की शोभा बढ़ती है।[4] इस प्रसंग में तुलसी ने भरत के मुख से आदर्श भक्ति का स्वरूप अभिव्यंजित कराया है। यदि आराध्य आराधक की छोटी-बड़ी सभी कामनाएँ पूर्ण करता चले तो उससे प्रेम करने में कौन सी कठिनाई है ? प्रेम का मार्ग बीहड़ तो तब बन जाता है, जब आराध्न उसके प्रतिकूल चलकर उसकी भक्ति की परीक्षा लेता है। भरत का कथन है कि प्रतिकूल चलते हुए आराध्य के प्रति भी यदि किसी आराधक का प्रेम सदा बढ़ता रहे तो वही सच्चा भक्त है।

---

१ मा० २.१९४. २–४

२ मा० २.१९४— "स्वपच सबर खस जमन भड़ पावँर कोल किरात।
राम कहत पावन परम होत भुवन विख्यात ॥"

३ मा० २.२०४. ६--८

४ मा० २.२०४—२.२०५--५

और उसी में उसकी मर्यादा तथा शोभा है। तुलसी ने यहाँ जो भक्ति का आदर्श उपस्थित किया है वह सर्वथा सशक्त एवं वर्णनातीत है।

चित्रकूट में सीता, राम और लक्ष्मण के शील से कुटिल रानी कैकेयी के हृदय में भी अपनी कुकर्म पर ग्लानि उत्पन्न हो गयी। इसलिए वह अपने मन में पृथ्वी और यमराज से प्रार्थना करने लगी कि यदि पृथ्वी फट जाय या विधाता मृत्यु ही देदे तो मेरे लिए अच्छा है।[१] कैकेयी की ऐसी आत्म ग्लानि जनित वेदना को देखकर कवि कहता है कि यह तथ्य वेद एवं लोक दोनों ही में प्रसिद्ध है कि राम से परांमुख लोगों को नरक में भी स्थान नहीं मिलता।[२] पीछे के उद्‌गारों में राम के सम्पर्क, राम के सौन्दर्य एवं राम नाम महिमा की चर्चा हो चुकी है। अतः यहाँ राम से परांमुख लोगों की दुर्गति दिखलाकर भगवान् राम के चरण कमलों में प्रेम करने की प्रेरणा प्रदान की गयी है।

चित्रकूट की सभा में वशिष्ठ-भरत संवाद के प्रसंग में वशिष्ठ जी कहते हैं कि हे भरत, कोई भी बात राम की कृपा से ही सत्य होती है। जो लोग राम से परांमुख रहते हैं उन्हें स्वप्न में भी सिद्धि नहीं मिलती।[3] यहाँ भी राम से परांमुख मनुष्यों की भर्त्सना की गयी है।

चित्रकूट के आश्रम में जनकपुर और अयोध्यावासियों के बीच जो दशरथ-मरण का शोक फैला, उससे ज्ञानी जनक भी नहीं बच सके। यह सही है कि राजा जनक ज्ञानी थे किन्तु राम और सीता से उन्हें इतना अधिक प्रेम था कि वे महाराज दशरथ की मृत्यु पर उदासीन न रह सके। संसार में तीन प्रकार के जीव हैं, विषयी, साधक और सिद्ध। इनमें से जिस किसी का मन राम के प्रेम से सरस है, सज्जनों की सभा में उसी का बड़ा आदर है। कारण यह है कि राम की भक्ति के बिना ज्ञान की भी शोभा उसी प्रकार नहीं है जिस प्रकार कर्ण-धार के बिना जलयान की शोभा नहीं होती।[४] यहाँ ज्ञान से भी भक्ति की महिमा अधिक प्रदर्शित की गयी है।

अयोध्या एवं जनकपुर के नर-नारी चित्रकूट से सीता एवं राम को लिये बिना घर नहीं लौटना चाहते थे। उन्हें राम-भक्ति के कारण उनके सम्पर्क में वनवास भी करोड़ों अमरावती के तुल्य सुखद प्रतीत होता था। वे सोचते थे कि राम, लक्ष्मण और वैदेही को छोड़कर जिसे घर अच्छा लगे तो देव ही उसके प्रतिकूल हैं। यदि विधाता सब पर प्रसन्न हों तो वन में राम के समीप निवास का सौभाग्य प्राप्त हो।[५] उनकी दृष्टि में जीव का परम

---

१ मा० २.५२.६

२ मा० २.२५२.७— "लोकहुँ बेद बिदित कवि कहहीं।
राम बिमुख थलु नरक न लहहीं॥"

३ मा० २.२५६.१— "तात बात फुरि राम कृपाहीं।
राम बिमुख सिधि सपनेहुँ नाहीं॥"

४ मा० २.२७७.३--५

५ मा० २.२८०.३--५

लक्ष्य परमात्मा का सान्निध्य ही है। यहाँ कवि ने अयोध्या एवं जनकपुर के नर-नारियों से राम-सम्पर्क के अपूर्व सुख का उद्‌गार व्यक्त कराया है।

चित्रकूट के वशिष्ठ-राम-संवाद प्रसंग में तुलसीदास ने वशिष्ठ के मुख से राम-प्रेम की महत्ता व्यक्त की है। जब राम ने वशिष्ठ से कहा कि अयोध्या और जनकपुर के लोग वनवास के कारण दुःखी हो रहे हैं तो वशिष्ठ ने उत्तर दिया—"हे राम, दोनों राज-समाजों के लिये तुम्हारे बिना सारे सुख की सामग्री नरक के समान है, क्योंकि आप प्राणों के प्राण, जीवों के जीव और सुख के सुख हैं। जिन्हें आपको छोड़कर घर अच्छा लगता है, उनसे विधाता प्रतिकूल है।[1] यहाँ तक कि सुख, और कर्म-धर्म जल जाय जहाँ राम के चरण कमलों में सद्‌भाव न हो। जहाँ राम का प्रेम प्रधान न हो, वहाँ योग, कुयोग और ज्ञान, अज्ञान है।[2] हे राम ! लोग आप ही के बिना दुःखी रहते हैं और आपको पाकर ही सुखी होते हैं। जिसके हृदय में जो कुछ रहता है, उसे आपही जानते हैं।[3] यहाँ भी राम के सान्निध्य से सम्बन्धित उद्‌गार व्यक्त हुआ है।

चित्रकूट की अन्तिम सभा में राम-भरत-संवाद के प्रसंग में भरत, राम से नम्रता-पूर्वक निवेदन कर रहे हैं कि हे नाथ ! आपके लिए संसार के सारे दुःख-दाह सहना भला है और आपके बिना परम पद पाना भी व्यर्थ है। हे स्वामी ! आप सुजान हैं, और सब के हृदय की बात जानते हैं तथा इस जन के हृयय की रुचि, लालसा और रहन भी आपको मालूम है। हे शरणागतों को पातने वाले ! आप सभी का पालन करेंगे और दोनों के छोरों का निर्वाह करेंगे। ऐसा मेरे हृदय में पूर्ण विश्वास है और आपको इस शील पर विचार करने से मुझे जरा भी चिन्ता नहीं रह जाती है।[4] यह एक आज्ञाकारी भक्त का अपने सेव्य के प्रति पूर्ण आत्म समर्पण का उद्‌गार है। वह अपने स्वामी के लिए संसार के सारे दुःखों को सहने के लिए सहर्ष तत्पर है और प्रभु से परांमुख होकर परम पद को भी ठोकर मारने को तैयार है। उसे पूर्ण विश्वास है कि उसके स्वामी, सबके हृदय की सारी गति जानने में समर्थ हैं। अतः वे अपने शरणागतों की रक्षा और पालन करेंगे और आराध्य एवं आराधक दोनों के सम्बन्धों का पूर्णतया निर्वाह भी करेंगे। भक्त का यह अद्‌भुत विश्वास और दृढ़ भरोसा भक्ति की आधार शिला है। भरत ने राम के सम्मुख गम्भीर मुद्रा में भक्तों को अनासक्त भाव से अपने आराध्य के आदेश-पालन की प्रेरणा प्रदान की है। आराध्य, आराधक या सेव्य-सेवक भाव की यह स्थिति परमाह्लादपूर्ण तथा मंगल जनक है।

---

१ मा० २.२९०.८—२.२९०

२ मा० २.२९१.१--२— "सो सुखु करमु धरमु जरि जाऊ।
जहँ न राम पद पंकज भाऊ॥
जोगु कुजोगु ग्यानु अग्यानू।
जहँ नहिं राम प्रेम परधानू॥"

३ मा० २.२९१.३

४ मा० २.३१४.२--५

"अरण्य-काण्ड"

गोस्वामी तुलसीदास ने भगवान् रामचन्द्र के अतुल पराक्रम का परिचय जयन्त-शासन प्रसंग में दिया है। देवाधिपति इन्द्र का पुत्र जयन्त अपने ऐवश्र्य एवं बल से उन्मत्त होकर काक-रूप धारण कर सीता के चरणों में प्रहार करता है। राम ने उसके अनुचित कर्म से क्षुब्ध होकर एक तृण का वाण उसकी ओर फेंका जिसने ब्रह्मवाण का रूप धारण कर लिया। उस वाण से भयभीत होकर जयन्त अपते पिता इन्द्र के पास गया, किन्तु राम से परांमुख होने के कारण उसे वहाँ भी शरण नहीं मिली। वह ब्रह्म और शिव के लोक में भी गया लेकिन किसी ने उसे बैठने तक के लिए भी नहीं कहा।[1] तुलसीदास जी ने यहाँ राम-द्रोहियों को सचेत करते हुए कहा है कि भगवत्परांमुख की रक्षा कौन कर सकता है? उसके लिए अपनी माता ही मृत्यु, पिता ही यमराज एवं सुधा ही विष बन जाती है। उसका परम मित्र उसके विरुद्ध सैकड़ों शत्रुओं के समान कार्य करता है। स्वयं गंगा भी उसके लिए वैत-रणी बन जाती है और सारा ब्रह्माण्ड उसके लिए अग्नि से भी बढ़कर तप्त हो जाता है।[2] राम के इस अतुल पराक्रम का परिचय प्रदान कर तुलसी ने उनसे प्रतिकूल होने वालों को सावधान किया है और केवल उन्हीं के शरण में जाने की सलाह दी है। अन्त में जयन्त ने भी सर्वत्र से निराश होकर राम की ही शरण ली और अपने कुकृत्य का फल भोगकर जान बचायी। भक्तों को भगवान् में अधिक स्नेह करने, और भगवत्परांमुखों को सन्मार्ग ग्रहण करने के लिए तुलसी ने ऐसे उद्‌गार मानस में व्यक्त किये हैं

महर्षि अत्रि ने अपनी स्तुति के मध्य में निर्मत्सर होकर भगवान् की भक्ति करके भवार्णव से उद्धार पाने का उपदेश दिया है।[3] इस "महाघोर संसार रिपु" पर विजय प्राप्त करने का यथार्थतः कोई दूसरा साधन है भी नहीं।

महर्षि अत्रि एवं उनकी पत्नी अनुसूया से विदा लेते समय भगवान् के समक्ष अत्रि की प्रणति से प्रभावित होकर तुलसीदास के हृदय से कलिकाल की करालता से मुक्ति पाने के लिए राम का अनन्य भक्त होने का उद्‌गार सहसा व्यक्त हो जाता है। उनका कथन है कि यह कठिन कलिकाल सब प्रकार के मलों का कोष है। इसमें धर्म, ज्ञान, योग और जप ये सारे साधन मनुष्य से हो नहीं पाते। इसलिये इस युग में दूसरों का सारा भरोसा त्यागकर

---

१ मा० ३.२.५—३.२.५ (पू०)

२ मा० ३.२.५ (उ०)—८ :—

"..................................। राखि को सकइ राम कर द्रोही ।।
मातु मृत्यु पितु समन समाना। सुधा होइ बिष सुनु हरिजाना ।।
मित्र करइ सत रिपु कै करनी। ता कहँ बिबुध नदी बैतरनी ।।
सब जगु ताहि अनलहु ते ताता। जो रघुबीर बिमुख सुन भ्राता ।।"

३ मा० ३.४.१३-१४

जो राम का भजन करते हैं, वे ही यथार्थ में चतुर प्राणी हैं ।[1] कवि की यह उक्ति बड़ी ही सशक्त है । कलियुग की करालता और भगवच्चरणों की शीतलता की अनुभूति जिसने नहीं की होगी, उसके हृदय से ऐसे उद्गार निकल ही नहीं सकते । ऐसी प्रेरणादायक वाणी व्यक्त कर भक्त प्रवर तुलसीदास ने महान् लोकोपकार किया है ।

"मानस" में राम-प्रेम-विह्वल यथार्थ भक्त का स्वरूप महर्षि अगस्त्य के शिष्य सुतीक्ष्ण का ही अंकित किया गया है । तुलसी की दृष्टि में आदर्श भक्त कैसा होता है, इसे देखना और समझना हो तो अरण्य-काण्ड के दसवें और ग्यारहवें दोहे का सविधि अध्ययन करना उचित होगा । तुलसी ने इस भक्त सुतीक्ष्ण के तीक्ष्ण एवं गम्भीर स्नेह का जिस कौशल से अंकन किया है वह किसी अन्य के लिए दुर्लभ है । उदाहरणार्थ निम्नांकित पंक्तियों का अवलोकन करें—

"निर्भर प्रेम मगन मुनि ग्यानी । कहि न जाइ सो दसा भवानी ।।
दिसि अरु बिदिसि पन्थ नहिं सूझा । को मैं चलेउँ कहाँ नहिं बूझा ।।
कबहुँक फिरि पाछें पुनि जाई । कबहुँक नृत्य करइ गुन गाई ।।
अबिरल प्रेम भगति मुनि पाई । प्रभु देखैं तरु ओट लुकाई ।।
अतिसय प्रीति देखि रघुबीरा । प्रगटे हृदयँ हरन भव भीरा ।।
मुनि मग माझ अचल होइ बैसा । पुलक सरीर पनस फल जैसा ।।
तब रघुनाथ निकट चलि आए । देखि दसा निज जन मन भाए ।।
मुनिहि राम बहु भांति जगावा । जागन ध्यान जनित सुख पावा ।।
भूप रूप तब राम दुरावा । हृदयँ चतुर्भुज रूप देखावा ।।
मुनि अकुलाइ उठा तब कैसे । बिकल हीन मनि फनिबर जैसें ।।
आगे देखि राम तन स्यामा । सीता अनुज सहित सुख धामा ।।
परेउ लकुट इव चरनंहि लागी । प्रेम मगन मुनिबर बड़भागी ।।"[2]

इस सुतीक्ष्ण ने भगवान् के बार-बार आग्रह करने पर भी अपने लिए इसके अतिरिक्त और कोई वरदान नहीं माँगा कि कमल नयन कौशलपति राम उसके हृद्रय में सदा निवास करें और वह उन्हें सदैव अपना सेव्य समझें तथा सेव्य-सेवक भाव को कभी न भूलें ।[3]

किसी विवशता के कारण राम से विरोध करने पर भी राम भक्त उनके स्नेह को नहीं भूलता । रावण के साथ राम को छलने के लिए जाते हुए मारीच के हृदय में भी राम-भक्ति की धारा उमड़ रही थी । वह सोच रहा था कि वह सीता, लक्ष्मण समेत राम का दर्शन करेगा और अपने नेत्र सफल करेगा । जिस भगवान् का क्रोध भी जीवों को मोक्ष देते

---

१ मा० २.६ (ख)— "कठिन काल मल कोस धर्म न ग्यान न जोग जप ।
परिहरि सकल भरोस रामहि भजहिं ते चतुर नर ।।"

२ मा० ३.१०.१०–२१

३ मा० १.११.२०–२१

कथन पर विश्वास कर रामचन्द्र के चरणों में अनुरक्त हो जाओ।[1] तुलसी के इस उद्गार में भगवान् कृष्ण के—"सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेक शरणं व्रज।"[2] इस गीतोक्त उद्गार की ध्वनि प्रकट हो रही है। इसी प्रसंग से तुलसी ने अपने सम्बन्ध में भी यह अभिमत व्यक्त किया है कि जातिहीन और पापमय जन्म से युक्त शबरी जैसी नारी को जिस प्रभु ने मुक्त कर दिया उसको भूलकर यथार्थ सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती।[3] शबरी प्रकरण के इन उद्गारों से तुलसी ने अन्यों को ही नहीं अपने आप को भी राम भक्ति में तल्लीन रहने का उपदेश दिया है।

पम्पासर का सौन्दर्य वर्णन करते हुए बिरही राम के हृदय में काम की चतुरंगिनी सेना का ध्यान हो आता है। तुलसीदास जी कहते हैं कि भगवान् का यह काम स्मरण कामियों की दीनता दिखाने के लिए ही है। स्वयं वे क्यों काम के वश में आवेंगे। वे तो त्रिगुणातीत, चराचर के स्वामी एवं अन्तर्यामी हैं। क्रोध, काम, लोभ, मद और माया ये तो उन्हीं की कृपा से छूटते हैं। यदि इन्द्रजाल करने वाला नट किसी पर प्रसन्न हो जाय तो वह मनुष्य उसके इन्द्रजाल के भ्रम में नहीं पड़ता।[4] इसी प्रकार इस चराचर जगत् के रचियता राम यदि किसी पर प्रसन्न हो जायँ तो वह मनुष्य उनकी माया के वश में नहीं पड़ता। यहाँ शिवजी पार्वती से कहते हैं कि—हे पार्वती! मैं अपनी अनुभूति की बात कहता हूँ कि इस जगत् में भगवान् का भजन ही सत्य है। सारा जगत् तो स्वप्न तुल्य है।[5] इस उद्गार में तुलसी ने जगत् को असत्यता और भक्ति की सत्यता सिद्ध की है।

अरण्य काण्ड के नारद-राम-संवाद प्रसंग में राम के मुख से अपने विवाह रोकने के कारणों को सुनकर और उससे अपना परमहित समझकर प्रसन्न और पुलकित हो नारद आँखों में आँसू भरकर कह रहे हैं कि भला कहिये तो सेवकों पर इस ढंग की ममता और प्रीति किस स्वामी की है?[6] सारे भ्रमों को छोड़कर जो राम जैसे प्रभु का भजन नहीं करते वे मनुष्य ज्ञान रंक, मन्द बुद्धि और अभागे हैं।[7] राम भक्ति से वंचित मनुष्यों की भर्त्सना करना ही इस उद्गार का लक्ष्य है।

अरण्य काण्ड के अन्त में नारद मुनि से भगवान् ने जो सज्जनों के लक्षण कहे हैं उनको लक्ष्य कर तुलसीदास जी अपने आराध्य की भक्त वत्सलता का वर्णन करते हुए कहते

---

१ मा० ३.३६.१६--१७—"नर बिबिध कर्म अधर्म बहुमत सोकप्रद सब त्यागहू।
विश्वास करि कह दास तुलसी राम पद अनुरागहू॥"

२ गीता, अ० १८, श्लो० ६६ (पू०)

३ मा० ३.३६— "जाति हीन अघ जन्म महि मुक्त कीन्हि असि नारि।
महामन्द मन सुख चहसि ऐसे प्रभुहि बिसारि॥"

४ मा० ३.३९.१–४

५ मा० ३.३९.५—"उमा कहउँ मैं अनुभव अपना। सत हरि भजनु जगत सब सपना॥"

६ मा० ३.४५.२

७ मा० ३.४५,३—"जे न भजहिं अस प्रभू भ्रम त्यागी। ग्यान रंक नर मन्द अभागी॥"

वाला है और जिनके प्रति की गयी भक्ति उस अवश को भी वश में करने वाली है, वे सुख के समुद्र भगवान् मुझे वाण से मारेंगे। मेरे पीछे धनुष-वाण लेकर दौड़ते हुए रामचन्द्र के विश्व-मोहन स्वरूप का मैं पुनः पुनः दर्शन करूँगा। अतः मेरे समान धन्य और कौन है ?[1] इस उद्गार में कई विशेषताएँ हैं। एक तो यह कि मारीच राक्षस वंश का था जो जन्मजात आर्यों से विरोध रखता था। दूसरे राम से युद्ध कर वह पहले परास्त भी हो चुका था। तीसरे यह कि राम को प्रवंचित करने के लिये उनके समीप जा रहा था, किन्तु ऐसी परिस्थिति में भी राम के चरणों में इसका यह अलौकिक प्रेम भगवद्भक्ति की महिमा की पराकाष्ठा है। सच तो यह है कि राम-प्रेम की बाढ़ में मन के सारे दुर्भाव सहसा प्रवाहित हो जाते हैं। यह प्रसंग इस तथ्य का ज्वलन्त प्रमाण है।

जटायु राम की स्तुति करते हुए "राम मन्त्र" की महिमा का वर्णन करता है और उसे असंख्य सन्तों के लिए मनोरंजन बतलाता है। राम के स्वरूप को उसने "कामादि खल दल" को नष्ट करने वाला और निष्काम योगियों के लिए प्रिय कहा है।[2] गृध्रराज की दृष्टि में भी "राम मन्त्र" लोकोपकारक होने के कारण असंख्य सन्तों को प्रिय है। तब फिर मनुष्यों की दृष्टि में क्यों नहीं होना चाहिए ? इस प्रसंग से यही बात स्पष्ट होती है।

शकुनाधम कुल में उत्पन्न जटायु को भी उसके प्रेम की महिमा से प्रभावित होकर भगवान् ने उसे योगी-दुर्लभ अपने लोक में स्थान दिया।[3] इससे उनके चित्त की कोमलता प्रकट होती है। ऐसे उदार एवं कोमल प्रभु को त्यागकर जो लोग विषयानुरागी होते हैं वे लोग अवश्य ही अभागे हैं।[4] मानसकार ने जटायु-राम-मिलन प्रसंग में विषयानुराग की तुच्छता और राम-भक्ति की महानता प्रदर्शित करने के लिए यह उद्गार व्यक्त किया है।

स्वयं भगवान् राम ने शबरी[5] को आश्वासन देते हुए भक्त की जाति-पाँति, कुल-धर्म, धन, बल और परिजन इत्यादि की तुच्छता द्योतित करने के लिए[6] यह उद्गार व्यक्त किया है कि इन सारी चीजों के रहते हुए भी भक्तिहीन मनुष्य वैसा ही है जैसा बिना जल के बादल।[7] यथार्थ में भक्ति के लिए उच्च कुल और ऐश्वर्य की कोई आवश्यकता नहीं है। अधम कुलोत्पन्न पर भक्त शबरी के योगाग्नि द्वारा शरीर त्यागकर भगवान् के चरणों में लीन होने पर तुलसी मानव-जाति को यह सुनहली सीख दे रहे हैं कि हे लोगो ! संसार के विविध कर्म और अधर्म तथा अनेक मत-मतान्तर ये सभी शोकप्रद हैं। इन्हें त्याग दो। मेरे

---

१ मा० ३.२६.९--३.२६

२ मा० ३.३२.९--१०

३ मा० ३.३३.१--२

४ मा० ३.३३.३—"सुनहु उमा ते लोग अभागी। हरि तजि होहिं विषय अनुरागी।।"

५ मा० ३.३५:४

६ मा० ३.३५.५

७ मा० ३.३५.६—"भगति हीन नर सोहइ कैसा। बिनु जल बारिद देखिअ जैसा।।"

कलि द्वारा प्रपीड़ित एवं साँसारिक रोगों से ग्रस्त मानवों को इस ओर आकृष्ट करने का स्तुत्य प्रयास किया है।

किष्किन्धाधिपति सुग्रीव, अंगद, हनुमान आदि बानरों को सीतान्वेषण के लिए दक्षिण की ओर भेजते हुए उनके शरीर धारण करने की सफलता की ओर संकेत करते हैं और कहते हैं कि हे भाई ! मानव शरीर धारण करने का तो यही फल है कि सारी कामनाओं का त्याग कर राम का भजन किया जाय। वही पुरुष गुणज्ञ है, और वही परम भाग्यशाली है, जो राम के चरणों में अनुरक्त है।[1] इस उद्गार में तुलसी ने मानव शरीर धारण करने के वास्तविक लक्ष्य का उद्घाटन किया है। इससे ध्वनि यह निकलती है कि जो इस लक्ष्य की पूर्त्ति नहीं करते वे महान् अभागे हैं।

"सुन्दर-काण्ड

यहाँ सुन्दर-काण्ड की संस्कृत वन्दना में तुलसी ने भगवान् राम के चरणों में अपने अनन्य प्रेम की अभिव्यक्ति की है। वे भगवान् को संबोधित कर कहते हैं कि हे राम ! मेरे हृदय में कोई दूसरी स्पृहा नहीं है। यह बात में सत्य कहता हूँ। यदि यह सत्य न हो तो आपसे किसी प्रकार छिपी नहीं रह सकती क्योंकि आप सभी प्राणियों की अन्तरात्मा हैं। वह स्पृहा केवल इतनी ही है कि आप अपने पाद-पद्मों में भक्ति अविरल एवं अमल अनुराग दीजिए। किन्तु उसके स्थायित्व के लिए एक वरदान और भी देने की कृपा कीजिए। मेरे मानस में कामादि अनेक दोष घुस आये हैं। इसलिए उसे स्वच्छ बनाकर अपनी भक्ति के निवास योग्य बना दीजिए।[2] तुलसीदास ने इस तथ्य का साक्षात्कार कर लिया था कि निष्कलुष मानस में ही भगवान् की भक्ति रह सकती है। इसीलिए उन्होंने अन्यत्र भी कहा है—

"जहां राम तह काम नहिं, जहाँ काम नहिं राम।
तुलसी कबहीं होत नहिं, रविरजनी इक ठाम ॥"[3]

यही भाव बड़े सुन्दर ढंग से विनयपत्रिका में भी व्यक्त किया गया है।[4]

सुन्दर काण्ड के हनुमान्-रावण संवाद में तुलसी ने फिर हृदय को निष्कलुष बना कर राम के चरणों में लगाने की बात कही है। अन्तर केवल इतना ही है कि जहाँ पहले प्रसंग पर कामादि दोष त्यागने पर अधिक बल दिया गया था, वहाँ इस प्रसंग में "मोहमूल बहु सूल प्रद" अभिमान त्याग करने पर जोर दिया गया है। भक्त,प्रवर हनुमान् परब्रह्म राम से विरोध न करने की बात समझाते हुए रावण से कहते हैं कि—हे रावण ! मद, मोह त्याग कर अपने हृदय में विचार कर देखो। राम नाम के बिना वाणी की शोभा ही नहीं होती।

१: मा० ४,२३.६—७

"देह धरे कर यह फलु भाई। भजिअ राम सब काम बिहाई ॥
सोइ गुनग्य सोई बड़भागी। जो रघुबीर चरन अनुरागी ॥"

२ मा० ५ श्लो० २

३ तुलसी सतसई, प्रथम सर्ग, दो० ४४

४ विनयपत्रिका, पद १२५

हैं कि "राम ऐसे दीनबन्धु और कृपालु हैं कि वे स्वयं अपने भक्तों के गुणों को अपने मुख से कहते हैं।[१] वे धन्य हैं जो सारी आशाओं को छोड़कर भगवत्प्रेम में पगे रहते हैं।"[२] इस उद्गार में भगवान् राम की भक्तवत्सलता और दीनबन्धुता का चित्रण कर तुलसी ने लोगों को राम भक्ति की ओर आकृष्ट करने का प्रयत्न किया है।

अरण्य काण्ड के अन्तिम दोहे में तुलसी ने नारी छवि में छके हुए मानवों को कामादि त्यागकर भगवान् राम के चरणों में प्रेम करने का आदेश दिया है। उन्होंने नारी के शरीर की उपमा दीपशिखा से दी है और मानव-मन की शलभ से। और काम तथा मद को छोड़कर भगवान् का भजन तथा सदा सत्संग करने का उपदेश दिया है।[3] कवि के इस उद्गार में नारी-छवि की अपार शक्ति व्यंजित होती है। जैसे पतंग दीपशिखा पर चढ़कर प्रायः भस्मीभूत ही हो जाते हैं, उसी तरह सकाम मानव-मन नारी-छवि-रूपी-दीपक की लपट से बच नहीं पाते। उससे बचने के लिए अलौकिक धैर्य, असीम साहस और उत्कट दृढ़ता की आवश्यकता है। तुलसीदास मानव-मन को उसी साहस और दृढ़ता को अपना कर राम भक्ति में प्रवृत्त होने के लिए आमंत्रित करते हैं।

"किष्किन्धा-काण्ड"

किष्किन्धा-काण्ड के प्रारम्भिक संस्कृत मंगलाचरण की अन्तिम पंक्ति में तुलसी ने उन पुण्य पुरुषों को धन्य कहा है जो सदैव श्रीरामनामामृत का पान करते हैं।[४] यह राम नामामृत वेद रूपी समुद्र से उत्पन्न हुआ है। कलिकाल के मलों को ध्वस्त करने वाला है, अविकारी है और सदैव श्रीमान् शम्भु के सिर तर विराजमान चन्द्रमा में शोभित रहता है। संसार के सारे रोगों का यह औषध है। सब के लिए सुखकर है और श्रीजानकी जी का तो जीवन ही है।[५] तुलसी ने अपने इस उद्गार में बड़े कौशल से राम-नाम जप की महिमा का उल्लेख किया है। इस अलौकिक अमृत में सामान्य अमृत से अत्यधिक विशेषता है। यह खारे समुद्र से उत्पन्न नहीं हुआ है वरन् वेद रूपी समुद्र से उत्पन्न हुआ है। कलिकाल के मारे मलों को दूर करने के लिए यह औषध तुल्य है। इसमें कभी कोई विकार आ नहीं सकता। सचराचर त्रिलोक के स्वामी, शिव भी अपने शिरस्थ चन्द्रमा में इसे रखा करते हैं। संसार के सारे रोगों का यह औषध है। यह प्राणिमात्र के लिए सुखकर है और माता जानकी का तो जीवन प्राण ही है। ऐसे अलौकिक अमृत को सदैव पीने वाले लोग तो अवश्य ही धन्य एवं विश्ववन्द्य हैं। तुलसी ने राम नामामृत की सारी विशेषताएं स्पष्ट कर

---

१ मा० ३.४३.१०

२ मा० ३.४६.१२—"ते धन्य तुलसी दास आस बिहाइ जे हरि रँग रँए॥"

३ मा० ३·४३ (ख)

४ मा० ४ श्लो० २.४—"धन्यास्ते कृतिनः पिबन्ति सततं श्रीरामनामामृतम्।"

५ मा० ४. श्लो० २

हे देवरिपु ! कोई सुन्दर नारी आभूषणों से भूषित होने पर भी क्या वस्त्र के बिना शोभा पा सकती है ? राम से परांमुख लोगों की सम्पति और प्रभूता यदि है तो नष्ट हो: जायेगी और पाने पर भी उनका पाना व्यर्थ है। जिस नदी का मूल सजल नहीं होता वे वर्षा बीत जाने पर फिर सूख जाती हैं। अर्थात् सारी सम्पत्तियों के मूल राम हैं जो सजल मूल के समान हैं। जो सम्पत्तिशाली उनकी कृपा पर निर्भर नहीं करता सम्पत्ति शीघ्र: नष्ट हो जाती है। हे रावण ! सुनो, मैं प्रण रोपकर कहता हूँ, यदि राम विमुख हो जायँ तो इस ब्रह्माण्ड में कोई भी रक्षक नहीं मिलेगा। हजारों शिव, विष्णु और ब्रह्मा राम के द्रोही की रक्षा नहीं कर सकते। इसलिए मोह से उत्पन्न और बहुत तरह की पीड़ा देने वाले अभिमान को तुम छोड़ दो और रघुकुल श्रेष्ठ एवं करुणा-सागर भगवान् राम का भजन करो।[1] यहाँ हनुमान् के मुख से कवि ने राम द्रोहियों के अकल्याण की चर्चा करायी है। रावण त्रिलोक विजयी सम्राट् था। उसके पास अतुल सम्पत्ति थी। यह शंकर का परम भक्त था और कठोर तपस्या करके उसने ब्रह्मा को भी प्रसन्न कर लिया था किन्तु हनुमान् कहते हैं कि राम से परांमुख होने पर न तो तुम्हारी सम्पत्ति बच सकती है और न तुम्हें किसी की शरण प्राप्त हो सकती है। यह सत्य है कि तुमने ब्रह्मा और शिव को प्रसन्न कर लिया है। पर उनकी बात कौन कहे स्वयं विष्णु भी राम से बिग्रह करने पर तुम्हारी रक्षा करने में असमर्थ होंगे। इस उद्गार में सम्पत्ति और रक्षा के सर्वश्रेष्ठ आधार भगवान् राम ही घोषित किये गये हैं। एक नहीं हजारों शंकर, विष्णु और ब्रह्मा से भगवान् राम अधिक समर्थ कहे गये हैं। तुलसीदास जी अपने इष्टदेव के अनुराग की उमंग में प्राय: यह भूल जाते हैं कि ब्रह्मा, विष्णु और शंकर भगवान् राम से पृथक् तत्व नहीं हैं। ये उन्हीं की सगुण मूर्तियाँ हैं जिन्हें क्रमश: सृष्टि, पालन एवं संहार का कार्य सौंपा गया है। विशेषत: भगवान् विष्णु के वैदिक स्वरूप और राम में तो कोई अन्तर ही नहीं है।

परम राम-भक्त विभीषण के मुख से तुलसी ने राम भक्ति का संदेश बड़े ही मार्मिक शब्दों में व्यक्त किया है। रावण के कल्याण के लिए पुलस्त्य ऋषि ने अपने शिष्य के द्वारा विभीषण से ये बातें कहला दी थीं जिन्हें उन्होंने सुअवसर पाकर उससे निवेदन किया।[2] विभीषण ने कहा, हे स्वामी ! काम, क्रोध, मद और लोभ ये नरक के मार्ग हैं। इन सबों को त्यागकर उस रामचन्द्र का भजन करना चाहिए जिनकी उपासना संत किया करते हैं। हे भाई ! राम मनुष्य हैं राजा नहीं हैं। वे निखिल भुवनों के अधीश्वर और कालों के भी काल हैं। वे ब्रह्म, अनामय, अज, भगवन्त, व्यापक, अजित, अनादि और अनंत हैं। वे कृपासिन्धु, गो, ब्राह्मण, गाय एवं देवताओं के हित के लिए मनुष्य का शरीर धारण किये हुए हैं वे भक्तों को प्रसन्न करने वाले, खलों के समूहों को नष्ट करने वाले तथा वेद धर्म के रक्षक हैं। शरणागतों के दुख को दूर करने वाले उस रामचन्द्र को समग्र वैर त्याग कर सिर झुकाना चाहिए। अत: हे स्वामी ! राम को सीता दे दीजिए और अकारण प्रेम करने वाले राम का भजन कीजिए। अपनी शरण में आने पर भगवान् राम उसका भी त्याग

---

१ मा० ५·२३·३—५·२३
२ मा० ५·३९ (ख)

नहीं करते जिसको विश्वद्रोह करने का पाप लगा रहता है। जिसका नाम ही आधिभौतिक, आधिदैहिक एवं आधिदैविक त्रितापों को समूल नष्ट करने वाला है, हे रावण ! वही स्वामी के रूप में प्रत्यक्ष हुए हैं, इसको समझो। मैं बार-बार तुम्हारे चरणों पर गिरता हूँ और विनय करता हूँ कि मान, मोह और मद त्यागकर कौशलेश्वर राम का भजन करो।[1] तुलसीदास ने विभीषण के इस उद्गार द्वारा भक्तों के समक्ष भगवान् राम के यथार्थ स्वरूप का चित्रण किया है और सारी कामनाएँ त्याग कर उनमें अनुरक्त होने की प्रेरणा प्रदान की है।

लंकाधिपति रावण से सम्बन्ध-विच्छेद कर भगवान राम के शरणागत विभीषण उनके कुशल प्रश्न करने पर उत्तर देते हैं—हे भगवान्। जीव की तब तक कुशल नहीं, और उसके मन में तब तक स्वप्न में भी विश्राम नहीं, जब तक शोकों का घर काम को त्याग कर वह राम का भजन नहीं करता।[2] राम का भजन जब तक न किया जाय जब तक लोभ, मोह, मत्सर, मद और अभिमान आदि अनेक दुष्ट हृदय में निवास करते हैं। जब तक भगवान् रामचन्द्र का प्रताप रूपी सूर्य हृदय में उदित नहीं होता तब तक उसमें ममता रूपी तरुण रात्रि का अन्धकार छाया रहता है जो कि राग-द्वेष रूपी उलूक को सुखकर होता है। किन्तु आज श्रीचरणों के दर्शन से भारी कुशल हुई और मेरे सारे भय दूर हो गए।[3] प्रस्तुत उद्गार में भगवान् के अभाव में जीव के हृदय में व्याप्त अन्धकार और उसमें सुख पूर्वक विचरण करने वाले खलों की चर्चा है। यहाँ भी यही सिद्धान्त व्यक्त किया गया है कि भगवान् के चरणों में चित्त लगाये बिना हृदय के सारे मल दूर नहीं हो सकते। अतः राम भक्ति ही सर्वथा करणीय है।

विभीषण की शरणागति के अन्तिम प्रसंग में तुलसी ने अपने उद्गारों में तीन बातें व्यक्त की हैं। भगवान् भक्त वत्सल हैं और उन्होंने विभीषण को अपनी शरण में लेकर रावण की क्रोधाग्नि से उसकी रक्षा की और उसे ऐसा राज्य दिया जो कभी खण्डित न हो सके।[4] दूसरी बात यह है कि अवढरदानी शिव की उदारता भी राम की उदारता के समक्ष नगण्य सी है, क्योंकि रावण को उन्होंने जो सम्पत्ति दसों सिर समर्पित करने पर दी थी, वह सम्पत्ति रामचन्द्र ने विभीषण के शरणागत होते ही बड़े संकोच से दी।[5] अर्थात् देते हुए उनके मन में यह ग्लानि हुई कि मैंने इसे कुछ नहीं दिया। तीसरी बात यह है कि इतने बड़े उदार प्रभु को छोड़कर जो लोग किसी अन्य देव की भक्ति करते हैं वे बिना सींग-पूछ के पशु हैं।[6] तुलसी ने यहाँ अपने इष्टदेव की महिमा-वर्णन करने की उमंग की पराकाष्ठा

---

१ मा० ५·३८—५·३९ (क)

२ मा० ५·४२—"तब लगि कुसल न जीव कहुँ सपनेहुँ मन विश्राम।
जब लगि भजत न राम कहुँ सोक धाम तजि काम॥"

३ मा० ५·४७·१—५

४ मा० ५·४९ (क)

५ मा० ५·४९ (ख)

६ मा० ५·५०·१—

"अस प्रभु छाड़ि भजहिं जे आना। ते नर पसु बिनु पूंछ विषाना॥"

कर दी है। भगवान् रामचन्द्र की शक्ति, उदारता, भक्तवत्सलता के साथ-साथ उनकी भक्ति की आवश्यकता का इस उद्गार में बड़े ही प्रभावोत्पादक शब्दों में अंकन हुआ है।

सुन्दर-काण्ड के उपसंहार में तुलसी ने भगवान् रामचन्द्र के कीर्ति-कीर्तन के महत्व का वर्णन किया है। वे कहते हैं कि राम के गुण-गण, सुख-भवन एवं संशय-शमन हैं। इसीलिए वे अपने मन को सभी आशा भरोसा त्याग कर उन सबका गान करने की प्रेरणा देते हैं। इसके पश्चात् वे एक सामान्य सिद्धान्त उपस्थित करते हैं कि रामचन्द्र के गुणों का गान "सकल सुमंगल दायक" है। जो लोग आदर के साथ उन्हें सुनते हैं वे बिना जलयान के भी भव-सागर पार कर जाते हैं।[1] तात्पर्य यह है कि रामचन्द्र का गुण-गान सुखप्रद- संदेह-नाशक एवं सभी सुमंगलों का दाता है। अतः निष्काम एवं निश्छल हृदय से उनके कीर्त्तन में अनुरक्त होने पर मनुष्य अनायास भवसागर पार कर जाता है।

लंका-काण्ड

लंका-काण्ड के प्रारम्भिक दोहे में महावीर, कालस्वरूप भगवान् रामचन्द्र का एक महान् धनुर्धर के रूप में चित्रण हुआ है। यथार्थ में वीरता का उद्गम-स्थल कालों के भी काल भगवान् राम ही हैं। कवि कहता है कि अरे मन ! उस भगवान् राम का भजन क्यों नहीं करता, जिसका धनुष स्वयं काल है और परमाणु, निमेष, लव, वर्ष, युग और कल्प जिसके प्रचण्ड वाण हैं।[2] वस्तुतः लंका-काण्ड के प्रारम्भ में भगवान राम की इसी रूप में वन्दना उपयुक्त थी। महाभारत के प्रारम्भ में भगवान कृष्ण ने भी अर्जुन के समक्ष अपना यही रूप प्रकट कर कहा था—

"कालोऽस्मि लोक क्षय कृत्प्रवृद्धो लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः।"[3]

अर्थात् मैं लोकों का क्षय करने वाला बढ़ा हुआ "काल" हूँ। यहाँ लोकों का संहार करने के लिए प्रवृत्त हूँ। कोटि-कोटि राक्षसवाहिनी का विध्वंस करने के लिए उद्यत भगवान राम की वीरता का इससे अधिक लोमहर्षक वर्णन हो नहीं सकता था। इस उद्गार में यह भाव निहित है कि भगवान केवल स्रष्टा, पालक या नियामक ही नहीं हैं वरन् अद्वितीय संहारक भी हैं। इनमें केवल माधुर्य ही नहीं है, विकरालता भी है। वे संसार के सभी गुणों का मूल एवं सभी भावों के उत्स हैं। वे केवल सत्य ही नहीं, शिव ही नहीं

---

१ मा० ५·६०·११—५·६०—

"सुख भवन संसय समन दवन विषाद रघुपति गुनगना।
तजि सकल आस भरोस गावहिं सुनहिं संतत सठ मना॥
सकल सुमंगलदायक रघुनायक गुन गान।
सादर सुनहिं ते तरहिं भव सिंधु बिना जल जान॥"

२ मा० ६· दो० १—"लव निमेष परमानु जुग बरष कलप सर चंड।
भजसि न मन तेहि राम को कालु जासु को दंड॥"

३ गीता, अ० ११, श्लो० ३२ (पू०)

और न केवल सौन्दर्य-मूर्त्ति ही हैं वरन उनमें एक ऐसी विकरालता एवं भयंकरता भी है जिससे दैत्यागण भयभीत और देव, मानव तथा अन्य चराचर सृष्टि आश्वस्त रहती है। उनकी प्रचंड शक्ति अपरिमित, अज्ञेय और अद्वितीय है। अतएव वे समग्र चराचर सृष्टि से सर्वथा वन्दनीय एवं सेव्य हैं।

सेतुबन्ध-प्रसंग के अन्त में महाकवि तुलसीदास के हृदय से राम की अलौकिक शक्ति के प्रति अद्भुत विश्वास का उद्‌गार फूट पड़ता है। पत्थर की तरह भारी पदार्थ भी यदि समुद्र में तैरने लगे तो इससे बढ़कर आश्चर्य का विषय क्या हो सकता है ? किन्तु यह कार्य भारत से लंका तक सेतु निर्माण के समय में प्रत्यक्ष देखा गया था। और यह कार्य सेतु निर्माण कराने वाले भगवान राम की महिमा से ही हुआ। तुलसी का कथन है कि ऐसे महिमामय भगवान को छोड़कर जो दूसरे देवों की आराधना में लग जाते हैं वे सचमुच ही बुद्धिहीन हैं।[1]

रावण की सभा में राम की निन्दा सुनकर अंगद के हृदय में बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ। इस क्रोध के आवेश में अंगद ने अपने दोनों हाथ पृथ्वी पर पटक दिये जिससे रावण के मुकुट उसके सिर से नीचे गिर पड़े। उनमें से चार अंगद ने राम की ओर फैंक दिया और क्रुद्ध होकर पृथ्वी पर अपना चरण टेक कर यह कठिन प्रण किया कि यदि रावण उसके चरण को पृथ्वी से टाल सके तो राम लौट जायेंगे और वह सीता को हार जायगा।[2] किन्तु रावण के सभी वीर प्रयत्न करके थक गये पर उसके चरण पृथ्वी तल से नहीं टले।[3] रावण भी अंगद के व्यंग-वचनों को सुनकर तेज हीन एवं लज्जित होकर अपने सिंहासन पर बैठ गया।[4] इस घटना के वर्णन के चमत्कृत होकर शिवजी पार्वती जी से कह रहे हैं कि राम जगदात्मा और सभी प्राणियों के प्राणों के पति हैं उनसे परांमुख रहकर रावण कैसे विश्राम पा सकता था ?[5] राम के भृकुटी-विलास से विश्व उत्पन्न होकर पुनः नष्ट हो जाता है और जो तृण से वज्र और वज्र से तृण कर सकते हैं उनके दूत का प्रण कैसे टल सकता था।[6] तुलसीदास ने यहाँ उमा-शंकर संवाद के प्रसंग में राम के अलौकिक स्वरूप एवं शक्ति का उद्‌गार प्रकट कर लोगों को उनसे परांमुख नहीं होने का परापर्श दिया है।

वानर-निश्चिर-युद्ध में निहित निश्चिरों की मुक्ति से चमत्कृत होकर भगवान की कोमलचित्तता, करुणाशीलता एवं बैर भाव से भी भजन और नाम-स्मरण का महत्व प्रदर्शित

---

१ मा० ६·३— श्री रघुबीर प्रताप ते सिंधु तरे पाषान।
ते मतिमंद जे राम तजि भजहिं जाइ प्रभु आन॥"

२ मा० ६·३४.८—९

३ मा० ६·३४·११—१२

४ मा० ६·३५·२—५

५ मा० ६·३५·६— "जगदातमा प्रानपति रामा। तासु बिमुख किमि लह बिश्रामा॥"

६ मा० ६·३५·७—८

करते हुए[१] शिव का पार्वती से कथन है कि भगवान् राम का ऐसा शील सुनकर भी जो उनकी भक्ति नहीं करते वे मनुष्य बुद्धिहीन और परम अभागे हैं ।[२] यहां तुलसी ने वैर भाव से भगवान का स्मरण करने वाले राक्षसों की मुक्ति की घोषणा शिव के मुख से निष्प्रमाण नहीं कराई है । श्रीमद्भागवत में भी शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से यही बात कही है ।[३]

आगे चलकर राम-रावण संग्राम में निहित राक्षसों के मुक्त होने की चर्चा करते हुए शंकर पुनः पार्वती से कहते हैं कि जो निश्चिर अधम तथा पाप की खान हैं, उनको भी "निजधाम" देने वाले राम की जो भक्ति नहीं करते वे मनुष्य सर्वथा मतिमंद हैं ।[४] यह उद्गार उपर्युक्त से सर्वथा अभिन्न है । अतः विस्तार भय से इसकी विशेष व्याख्या का लोभ संवरण किया जा रहा है ।

भगवान राम के नाग-पाश से बांधे जाने पर शंकर, पार्वती से कहते हैं कि जिनका नाम जप करके मनुष्य कठोर भव-पाश से मुक्त होते हैं, वे भगवान क्षुद्र नाग-पाश से कैसे बांधे जा सकते हैं ?[५] अतः भगवान के सगुण चरित्रों का निर्णय बुद्धि और वाणी से करना असंभव है ।[६] इस तथ्य को हृदयंगम कर विरक्त जन सारे तर्कों को त्यागकर भगवान का भजन करते हैं ।[७] इस उद्गार में भगवद्भक्ति के लिए तुलसी ने विश्वास और प्रेम पर अधिक बल दिया है और भक्ति-मार्ग में तर्क को सर्वथा अनावश्यक घोषित किया है ।

रावण के मारे जाने पर ब्रह्मा राम की स्तुति करते हुए कहते हैं कि हे प्रभु ! मुझसे तो अधिक कृतकृत्य ये बानर ही हैं जो सादर आपके मुखारविन्दु का दर्शन कर रहे हैं । किन्तु मेरे देव शरीर को भी धिक्कार है जो मैं आपकी भक्ति के बिना इस सृष्टि के व्यापार में भटक रहा हूं ।[८] इस उद्गार में तुलसी का यह मत स्पष्ट ध्वनित होता है कि भक्त बन्दर भी अच्छे हैं किन्तु भक्तिहीन ब्रह्मा नहीं । मानस में ही अत्यन्त उन्होंने अपने आराध्य राम के मुख से भी यही बात कहलायी है ।[९]

रावण-बध के पश्चात् अयोध्या आते समय मार्ग में निषाद-राम-मिलन प्रसंग में तुलसी ने यह उद्गार व्यक्त किया है कि जो प्रभु सब तरह से पतित निषादराज को भक्त

---

१ मा० ६·४५·४—५

२ मा० ५·४५·६—'अस प्रभु सुनि न भजहिं भ्रम त्यागी ।
नर मतिमंद ते परम अभागी ॥"

३ श्रीमद्भागवत, स्कंध, १०, अ० २६, श्लो० १३—१५

४ मा० ६·७१ "निसिचर अधम मलाकर ताहि दीन्ह निज धाम ।
गिरिजा ते नर मंदमति जे न भजहिं श्रीराम ॥"

५ मा० ६·७३

६ मा० ६·७४·१

७ मा० ६·७४·१—"अस बिचारि जे तग्य बिरागी । रामहिं भजहिं तर्क सब त्यागी ॥"

८ मा० ६·१११.१७—१८

९ मा० ७·८६·९—"भगति हीन विरंचि किन होई । सब जीवहु सम प्रिय मोहि सोई ॥

जानकर अपने हृदय से आलिंगन कर लेते हैं उस परम कृपालु प्रभु को मैं मोह के कारण सर्वथा विस्मृत कर चुका हूँ।[१] इस उद्‌गार में प्रकारान्त से अपनी भर्त्सना करते हुए तुलसी लोगों को राम-भक्ति के लिए आमंत्रित कर रहे हैं।

गोस्वामी जी लंका-काण्ड के अन्तिम दोहे में अपने मन को समझाते हुए कहते हैं कि यह कलिकाल पापों का घर है और इसमें भगवान राम के नाम को छोड़कर कोई और सहारा नहीं है।[२] रामनाम के संबंध में तुलसी ने अपने ग्रंथों मे इस प्रकार के अनेक भाव व्यक्त किये हैं।[३] यथार्थ में उन्होंने नामी से नाम को ही अधिक महत्व प्रदान किया है।[४]

"उत्तर-काण्ड"

तुलसी ने "मानस" के उत्तर-काण्ड में रामराज्याभिषेक के पश्चात् सर्वप्रथम वेदों से उनकी स्तुति करायी है। वेद परमात्मा के निःश्वास हैं। मानस में ही "जाकी सहज स्वास श्रुति चारी"[५] कहकर तुलसी ने इस तथ्य का प्रतिपादन किया है। वेद शब्द का अर्थ ज्ञान भी है। जड़-जगत् से भाव-जगत् सर्वथा स्वतन्त्र और पृथक है, किन्तु दोनों ही परमात्मा के स्वरूप हैं। परमात्मा के स्वरूप को चराचर सृष्टि के कल्याण के लिए सर्वप्रथम उद्‌घाटित करने वाले वेद ही हैं। अतः राक्षस विध्वंस के पश्चात् राम-राज्य के प्रारम्भ में सर्वप्रथम वेदों से ही स्तुति कराकर तुलसी ने सत्य एवं काव्यगत औचित्य का बड़े ही कौशल से निर्वाह किया है। परमात्मा का यथार्थ स्वरूप ज्ञानमय और जगन्मय भी है, जिनमें से प्रथम को निर्गुण और द्वितीय को सगुण कहते हैं। इस तथ्य की स्पष्ट घोषणा तुलसी ने वेद-स्तुति की प्रथम पंक्ति में राम को "जय सगुन निर्गुन रूप"[६] कहकर की है। जो लोग ब्रह्म को केवल निर्गुण या केवल सगुण समझते हैं वे नितान्त भ्रम में हैं। तुलसी के यही शब्द नहीं वरन् उनकी अन्य पंक्तियाँ भी इसका पूर्ण समर्थन करती हैं।[७] वस्तुतः निर्गुण ब्रह्म केवल चिन्तन का विषय बन सकता है। उसका ध्यान, भजन और कीर्तन सर्वथा असम्भव है। जो अवांमनसगोचर और अव्यक्त है, उसका ग्रहण मन, वाणी एवं नेत्र कैसे कर सकते हैं।

---

१ मा० ६.१२१.१७—१८

२ मा० ६.१२१ (ख)—"यह कलिकाल मलायतन मन करि देखु बिचार।
श्री रघुनाथ नाम तजि नाहिन आन अधार॥"

३ विनयपत्रिका, पद १५६; २२६
कवितावली, उत्तरकाण्ड, पद ८६—६३

४ मा० १.२५ (पू०); १.२६.८

५ मा० १.२०४.५ (पू०)

६ मा० ७.१३.१

७ "हियँ निर्गुन नयनन्हि सगुन रसना राम सुनाम।
मनहुँ पुरट संपुट लसत तुलसी ललित ललाम॥" —दोहावली, दो० ७

अतः मनुष्य के पास भगवद्भजन के जितने साधन हैं, निर्गुण ब्रह्म उनके द्वारा ग्राह्य नहीं। न मन उसका परिचय प्राप्त कर सकता है न वाणी उसके सम्बन्ध में कुछ कह सकती है और न नेत्र उसकी रूप-माधुरी का पान कर सकते हैं। अतः भावाकुल भक्त उसके निर्गुण रूप को स्वीकार करते हुए भी सगुण रूप की ही विशेष सेवा और भजन करते हैं। इसीलिए वेदों ने यहाँ स्पष्ट घोषणा की है कि जो अज, अद्वैत, अनुभवगम्य एवं मन से परे ब्रह्म का ध्यान और भजन करते हैं, वे कहें या जानें किन्तु हम तो आपके सगुण रूप के यश का ही नित्य वर्णन करते हैं।[1] इसीलिए तुलसी ने राम के निर्गुण रूप का स्मरण दिलाते हुए भी, उनके अवतार को सगुण ही माना है।[2] वेद-स्तुत की प्रथम पंक्ति के अवशिष्ट शब्द अर्थात् "रूप अनूप भूप-सिरोमने" निर्गुण-सगुण ब्रह्म के रूप का अवतार राम को ही प्रमाणित करते हैं। इस वेद-स्तुति के अन्तिम छन्द में पूर्वार्द्ध में इसी तथ्य का पूर्णतः समर्थन किया गया है। यथार्थ में तुलसी के सिद्धान्तों का निचोड़ यही है और इसी सिद्धान्न को पल्लवित करने के लिए "नाना पुराण निगमागमों, यद्रामायणे निगदितं" और "क्वचिदन्यतोऽपि" के सहारे से सम्पूर्ण "मानस" के कलेवर की सृष्टि हुई है। तुलसीदास ने इस वेद-स्तुति में अपने इन सिद्धान्तों की चर्चा कर उन्हें वेद-विहित सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। मानस में भक्ति की प्रधानता सिद्ध करने के लिए वेद-स्तुति का तीसरा छन्द लिखा गया है। तुलसीदास का कथन है कि जो ज्ञान के मान से मतवाले होकर राम की भव-हरणी भक्ति का आदर नहीं करते, वे सुरदुर्लभ पदों को प्राप्त करके भी वहाँ से च्युत हो जाते हैं।[3] अतः इस छन्द के उत्तरार्ध में सारी आशाओं का परित्याग कर विश्वासपूर्वक राम भक्त बनने की प्रबल प्रेरणा प्रदान की गयी है।[4] पुनः अन्तिम छन्द की अन्तिम पंक्ति में भी उपसंहार के रूप में यही बात दुहरायी गयी है। वहाँ, मन, वचन एवं कर्म से सारे विकारों को छोड़कर राम के चरणों में अनुरक्त होने का उपदेश दिया गया है।[5] वेद-स्तुति के इन उद्गारों से परमात्मा को निर्गुण-सगुण, वेद शास्त्रपुराणानुमोदित प्रमाणित कर उनके चरणों में निर्विकार भक्ति रखने की प्रेरणा कूट-कूट कर भरी गयी है।

वेदों के पश्चात् ज्ञान मूर्ति शंकर[6] से राम की स्तुति करायी गयी है। शंकर भी ज्ञान स्वरूप हैं। पर तुलसी के अनुसार राम के समक्ष जाकर वे पुलकित हो गए और उनकी वाणी गद्गद हो गयी।[7] उन्होंने मनुष्यों के बहुरोग वियोग का कारण भगवच्चरणों के निरादर का ही फल बतलाया।[8] और योग का भरोसा छोड़कर भगवान् राम का सेवक

१ मा० ७.१३.२१–२२
२ मा० १.३०४.१—"मंगल सगुन सुगम सब ताकें। सगुन ब्रह्म सुन्दर सुत जाकें॥"
३ मा० ७.१३.९–१०
४ मा० ७.१३.११–२२
५ मा० ७.१३.२४
६ मा० ३ श्लो० १, पंक्ति १ ; ७.१०८.१
७ मा० ७.१३ (ख)
८ मा० ७.१४.९–११

बनने का ही आदेश दिया।[1] अन्त में उन्होंने भगवान् राम के चरणों में अनपायिनी भक्ति एवं सत्संग की बार-बार याचना की है।[2] राम-भक्ति को वेद-स्तुति में वेद-समर्थित सिद्ध कर और ज्ञान मूर्ति शंकर से राम-भक्ति की याचना कराकर तुलसी ने अपने समकालीन हिन्दू समाज में ऐक्य एवं सद्भाव के विस्तार का स्तुत्य प्रयास किया है।

राम के समकालीन अयोध्यावासियों के उद्गारों में भी राम-भक्ति की महिमा का अलौकिक स्वरूप प्रस्फुटित हुआ है।[3] इसकी एक-एक पंक्ति भगवान् के सौन्दर्य एवं सद्गुणों का सूत्र है और भक्तों के हृदय-कानन को उल्लसित करने के लिए शीतल, मन्द एवं सुगन्ध-पूर्ण मलय समीरण है। आराध्य के रूप-गुण वर्णन करने की शैली में तुलसी सर्वथा बे जोड़ हैं।

वेद और शिव की स्तुतियों के पश्चात् तुलसी ने सतत् बाल-ब्रह्मचारी ज्ञान-मूर्ति परम-तपस्वी महर्षि सनक, सनन्दन, सनत्कुमार एवं सनातन द्वारा भगवान् राम की स्तुति करायी है। इस स्तुति में भी भगवान् को निर्गुण एवं गुण-सागर दोनों कहा गया है।[4] साथ ही एक तरफ "इन्दिरा रमण" एवं "भूधर" (शेष) तथा अनादि कहा गया है।[5] भगवान् को "सर्व", "सर्वगत" एवं "सर्व उरालय" कहकर उनके निर्गुण एवं सगुण स्वरूपों की झलक दी गयी है और उनसे कामादि को दूर कर हृदय में रहने की प्रार्थना की गयी है।[6] भगवान् के सर्वव्यापक, सबके अन्तःकरण में रहने वाले सगुण-निर्गुण स्वरूप का इस उद्गार में विवेचन किया गया है। स्वयं ब्रह्मा के पुत्र भगवान् राम के प्रति जो भाव रखते हैं, वह मानव को निश्चय ही रखना चाहिए। इस उद्गार से यही बात ध्वनित होती है।

भगवान् की भक्ति परम ज्ञानी लोगों के हृदयों में भी सदैव प्रदीप्त रहती है और अपनी तेजस्विता से उन्हें आह्लादित करती रहती है। इस तथ्य के स्पष्टीकरण के लिए कवि के हृदय से यह उद्गार फूट पड़ा है कि भगवान् राम के पास आकर उनके चरित्र देख-

---

१ मा० ७.१४.१४

२ मा० ७.१४ (क)

३ मा० ७.३०.१--१०

जहँ तहँ नर रघुपति गुन गावहिं। बैठि परसपर इहइ सिखावहिं॥
भजहु प्रनत प्रतिपालक रामहि। सोभा सील रूप गुन धामहि॥
जलज बिलोचन स्यामल गातहि। पलक नयन इव सेवक त्रातहि॥
धृत सर रुचिर चाप तूनीरहि। सन्त कंज बन रबि रन धीरहि॥
काल कराल व्याल खगराजहि। नमत राम अकाम ममता जहि॥
लोभ मोह मृगजूथ किरातहि। मनसिज करि हरि जन सुखदातहित॥
संसय सोक निविड़ तम भानुहि। दनुज गहन घन दहन कृसानुहि॥
बहु बासना मसक हिम रासिहि। सदा एकरस अज अबिनासिहि॥
मुनि रंजन भंजन महि भारहि। तुलसीदास के प्रभुहि उदारहि॥"

४ मा० ७.३४.३५

५ मा० ७.३४.४

६ मा० ७.३४.७--८

कर महर्षि नारद जब ब्रह्मलोक में जाकर उनका वर्णन करते हैं तो ब्रह्मा अत्यन्त प्रसन्न हो जाते हैं और सनकादि ऋषि भी अपनी समाधि भूलकर भगवान् का गुणानुवाद सुनने लगते हैं।[1] जब जीवन्मुक्त एवं ब्रह्मलीन मुनि भी अपना ध्यान छोड़कर रामचन्द्र के चरित्रों का श्रवण करते हैं तब तो भगवान् की कथा से प्रेम न करने वाले हृदय को पाषाण ही कहना युक्ति संगत होगा।[2] यह उद्गार भगवद्भक्ति में अनुराग प्रदर्शित करने के लिए व्यक्त किया गया है।

तुलसीदास उत्तर-काण्ड में वेदों से, शंकर से एवं सनक, सनन्दन आदि से राम को परंब्रह्म घोषित कराकर ब्रह्मर्षि वशिष्ठ से भी उनका परंब्रह्मत्व स्वीकृत कराते हैं। एक बार महामुनि वशिष्ठ राम के घर पर आते हैं और उनसे पूजित एवं समावृत होकर कहते हैं कि हे राम! आप परब्रह्म होकर भी जो आदर्श मानव चरित्र दिखाते हैं उसके अवलोकन से हमारे हृदय में कभी-कभी मोह उत्पन्न हो जाता है अर्थात् मैं कभी-कभी आपको परंब्रह्म को आदर्श मानव के रूप में देखकर भ्रम में पड़ जाता हूँ। मैंने अपने पितृदेव ब्रह्मा से पौरोहित्य कर्म लेने की अनिच्छा प्रकट की थी क्योंकि सारे वेद, पुराण और स्मृतियां इसकी निन्दा करती हैं, किन्तु ब्रह्मा ने मेरी बात स्वीकार नहीं की। उन्होंने मुझसे कहा कि पौरोहित्य कर्म स्वीकार करने से तुम्हें आगे लाभ होगा क्योंकि इस वंश में स्वयं परब्रह्म परमात्मा नररूप में प्रकट होंगे। मैने भी समझा कि जिस भगवान् के लिए अनेक प्रकार के जप-तपों की आवश्यकता है, उनका दर्शन यदि मैं अपने यजमान के रूप में करूँ तो इससे बड़ा लाभ ही क्या है?[3] संसार में जितने प्रकार के धर्म और शुभ कर्म बतलाये गये हैं तथा जितनी प्रकार की विद्याएँ पढ़ने की बात कही गयी हैं, उन सबका एकमात्र फल आपके चरणों में प्रेम ही है।[4] वस्तुत: वही सर्वज्ञ है, वही तत्वज्ञ है, वही पण्डित है, वही गुणों का भण्डार और अखंड विज्ञानी है, वही चतुर और सब लक्षणों से युक्त हैं, जिसको आपके चरण-कमलों में प्रेम हो।[5] इसलिए हे स्वामी! मैं आपसे एकमात्र वही वरदान माँगता हूँ कि किसी भी जन्म में आपके चरण कमलों से प्रेम नहीं छूटे।[6] स्वयं ब्रह्मा जी के पुत्र राम को पूर्णब्रह्म

---

१ मा० ७.४२.३--७

२ मा० ७.४२:—"जीवन मुक्त ब्रह्म पर चरित सुनहिं तजि ध्यान।
जे हरि कथाँ न करहिं रति तिन्ह के हिय पाषान॥

३ मा० ७.४८.१—७.४८

४ मा० ७.४९.१—४

"जप तप नियम जोग निज धर्मा। श्रुति संभव नाना सुभ कर्मा॥
ग्यान दया दम तीरथ मज्जन। जहाँ लगि धर्म कहत श्रुति सज्जन॥
आगम निगम पुरान अनेका। पढ़े सुने कर फल प्रभु एका॥
तव पद पंकज प्रीति निरंतर। सब साधन कर यह फल सुन्दर॥"

५ मा० ७.४९.७—८

"सोइ सर्वग्य तग्य सोइ पण्डित। सोइ गुनगृह विग्यान अखंडित॥
दच्छ सकल लच्छन जुत सोई। जाकें पद सरोज रति होई॥"

६ मा० ७.४९

मानकर उनसे अपनी भक्ति देने की प्रार्थना करते हैं, इससे बढ़कर जनता के हृदय में राम के परमब्रह्मत्व पर विश्वास कराने का साधन और कौन-सा हो सकता है ?

ब्रह्मा के पुत्र सनकादि तथा वशिष्ठ से राम का परब्रह्मत्व स्वीकृत कराकर तुलसी उनके अन्य पुत्र नारद से भी यही कार्य कराते हैं। तुलसी ने भगवान् राम का प्रत्यक्ष स्वधामगमन का वर्णन नहीं किया है। नारद से स्तुति कराकर ही उन्होंने रामायण की कथा समाप्त कर दी है। नारद की स्तुति में भगवान के कार्यों एवं उनके स्वरूप का विशद विवेचन उपलब्ध होता है।[1] नारद ऋषि सप्रेम राम की स्तुति कर उन्हें हृदय में रखकर ब्रह्मलोक को प्रस्थान करते हैं,[2] और यहीं रामकथा समाप्त हो जाती है। यहाँ के भक्तिपूर्ण उद्‌गार में स्वयं देवर्षि नारद त्राहि-त्राहि करके राम के चरणों पर गिर पड़ते हैं। तुलसीदास ने इस प्रसंग से यह सूचित किया है कि भगवान राम जिस प्रकार अपने अलौकिक विश्वरूप में अवतीर्ण हुए थे उसी प्रकार वे परमोत्तम महर्षियों के समक्ष उनसे स्तुत होते हुए अपने यथार्थ रूप में विलीन हुए। वे कालजयी, सर्वव्यापक एवं अपनी माया से मानव-रूप धारण करने वाले हैं।

समग्र रामायण की कथा कहकर शिव पार्वती से रामचरित की असंख्यता, साक्षात् वेद तथा शारदा से भी उनके वर्णन की अशक्यता तथा उनकी भक्ति प्रदान करने की क्षमता की बड़े ही ओजस्वी एवं विश्वासप्रद शब्दों में व्यंजना करते हैं।[3] पार्वती भी शिव के इस विश्वास का समर्थन करती हुई कहतीं हैं कि जो लोग रामचरित सुनकर तृप्त हो जाते हैं, वे उसके यथार्थ रस को नहीं जानते। जो लोग जीवन्मुक्त एवं महामुनि हैं, वे भी राम के गुणों का वर्णन एवं श्रवण किया करते हैं। यदि कोई मनुष्य भवसागर को पार करना चाहता है तो रामकथा ही उसके लिए एकमात्र दृढ़ नौका है। जो लोग साँसारिक गृहस्थी में हैं। उनके लिए भी रामकथा श्रवण-सुखद और मनोभिराम है। संसार में ऐसा कौन कान वाला है जो राम की कथा का सुनना पसंद न करे। वस्तुतः जिन्हें राम की कथा अच्छी नहीं लगती वे जड़ जीव निश्चय ही आत्मघाती हैं।[4] इस उद्‌गार में रामकथा से पराँमुख रहने वालों की भर्त्सना करते हुए जीवन्मुक्त महामुनियों को भी राम कथा में तल्लीन बतलाकर प्रकारान्तर से साँसारिक लोगों को राम कथा में प्रवृत्त होने की प्रबल प्रेरणा प्रदान की गयी है।

पक्षिराज गरुड़ से काकभुशुण्डि का कथन है कि हे गरुड़ ! आपने जो अपने मन में मोह उत्पन्न होने की बात कही, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। मनुष्यों की बात कौन कहे, नारद, शिव, ब्रह्मा, सनकादि आदि जो आत्मवादी मुनि हैं, उनमें से भी मोह ने किसको अन्धा नहीं किया, काम ने किसको नहीं नचाया, तृष्णा ने किसको पागल नहीं किया और किसके हृदय को क्रोध ने नहीं जलाया ? लोभ ने किसकी हँसी नहीं करायी, धन-मद ने किसे

---

१ मा० ७·५१·१—९
२ मा० ७·६१
३ मा० ७·५२·१—५
४ मा० ७·५३·१—६

टेढ़ा नहीं बनाया, प्रभुता ने किसे बधिर नहीं किया और मृगलोचनी के नेत्र-वाण किसके हृदय में नहीं लगे। इसी प्रकार गुणाभिमान, यौवन-ज्वर, ममता, मत्सर, शोक, चिन्ता, माया, मनोरथ, सुत, वित्त एवं लोक-प्रतिष्ठा की आकांक्षा, इन सबों ने किसके मन को मलिन एवं दूषित नहीं किया? वे सारे माया के परिवार हैं। औरों की बात कौन कहे, इनसे साक्षात् ब्रह्मा एवं शिव भी भयभीत रहते हैं। यह माया की प्रचण्ड सेना समस्त संसार में व्याप्त हो रही है। जिसके सेनापति काम, दम्भ, कपट एवं पाखंड हैं। वह माया राम की दासी है, पर विचार करने पर तो मिथ्या ही ठहरती है। फिर भी मैं शपथ करके कहता हूँ कि वह राम की कृपा के बिना नहीं छूट सकती। जिसके भ्रू-विलास से वह अपने सारे समाज के साथ नटी-सी नाच रही है, वही निखिल शुभ-गुणों के समूह सच्चिदानंदघन राम है।[1] उनके समक्ष उपस्थित होने पर मोह नहीं रह पाता क्योंकि सूर्य के समक्ष अन्धकार नहीं जाता।[2] स्वयं वही भगवान राम भक्तों के कल्याण के लिए मनुष्य रूप धारण कर सामान्य मनुष्यों के ऐसा चरित्र करते हैं किन्तु इस मानव शरीर धारण से उनमें कोई दोष नहीं आता? जैसे नट अनेक वेष धारण कर नृत्य करता है और वेषानुकूल लीला दिखाता है, किन्तु वह स्वयं वही नहीं बन जाता।[3] भगवान के सम्बन्ध में मोह निरर्थक है। इनमें अज्ञान का आरोप स्वप्न में भी सच्चा नहीं है।[4] जैसे बालक के शरीर में व्रण हो जाता है, उसी तरह मनुष्यों के हृदय में मोह उत्पन्न हो जाता है और जैसे माता बालक के कल्याण के लिए उसके व्रण को चिरवाती है, उसी प्रकार भगवान् मोह उत्पन्न करके भक्तों के अभिमान को दूर करते हैं।[5] तुलसीदास जी कहते हैं कि ऐसे प्रभु की भ्रम त्यागकर सेवा क्यों न की जाय।[6] इस उद्‌गार में माया की सेना और मोह की प्रचण्डता का सजीव वर्णन है। भगवान् अपने भक्तों के अभिमान को दूर करने के लिए अपनी माया से उनके हृदय में मोह उत्पन्न कर देते हैं और फिर उसे ज्ञान प्रदान कर उसका निराकरण भी कर देते हैं। ऐसे कृपालु भगवान् का भजन नितान्त आवश्यक है।

कागभुशुण्डि ने आत्ममोह की चर्चा कर रामचन्द्र की भक्ति के बिना ज्ञानी मनुष्य को भी बिना पूँछ-सींग का पशु घोषित किया है। उनकी सम्मति में सोलहों कलाओं से परिपूर्ण चन्द्र एवं समस्त तारागणों के उदित होने पर और सभी पर्वतों के ऊपर दवाग्नि लगाने पर भी जैसे सूर्य के उदय के बिना रात्रि का गहन अन्धकार दूर नहीं हो सकता, वैसे

---

१ मा० ७·७०·५—७·७२·३

२ मा० ७·७२·८

३ मा० ७·७२ (क); ७२ (ख)।

४ मा० ७·७३·७

५ मा० ७·७४·८—७·७४ (ख) पू०

६ मा० ७·७४ (ख) उ०—

"तुलसिदास ऐसे प्रभुहि कसन भजहु भ्रम त्यागि।"

ही राम के भजन के बिना जीवों का क्लेश कथमपि दूर नहीं हो सकता।[1] इस उद्‌गार में एकान्त रमणीय उपमा के द्वारा भगवान् की क्लेशहारिणी शक्ति में प्रगाढ़ विश्वास व्यक्त किया गया है और उनकी भक्ति करने का सन्देश दिया गया है।

कागभुशुण्डि की वाणी में अपनी अनुभूति प्रकट करते हुए तुलसी का कथन है कि भगवान् के भजन के बिना क्लेश दूर नहीं हो सकता है।[2] वेद और पुराण भी यही गाते हैं कि भगवान् की भक्ति के बिना क्या कभी कोई सुख पा सकता है?[3] अर्थात् नहीं।

तुलसीदास जी संतोष आदि सद्‌गुणों का वर्णन करते हुए कागभुशुण्डि से गरुड़ को कहलाते हैं कि बिना विश्वास के जैसे कोई सिद्धि नहीं मिल पाती वैसे ही भगवान् के भजन के बिना संसार का भय नष्ट नहीं होता।[4] बिना विश्वास के भक्ति नहीं होती और भक्ति के बिना राम कृपा नहीं करते और राम की कृपा के बिना स्वप्न में भी जीव को विश्राम नहीं मिलता।[6] अतः हे मतिधीर गरुड़! ऐसा विचार कर, सारे कुतर्क एवं संदेह छोड़कर, करुणाकर, सुन्दर एवं सुखद रघुवंशी राम का भजन करो।[7]

कागभुशुण्डि गरुड़ को उपदेश देते हुए अपना उद्‌गार प्रकट करते हैं कि भगवान् भाव के वशीभूत हैं, सुख के निधान हैं और करुणा के भवन हैं। अतः अपनी ममता, मद एवं मान का परित्याग कर सदैव सीता-रमण भगवान् श्रीरामचन्द्र का भजन करना चाहिए।[8]

कागभुशुण्डि अपने काग शरीर की प्राप्ति का कारण बतलाते हुए गरुण से कहते हैं कि जप, तप, यज्ञ, सम, दम, व्रत, दान, विरति, विवेक, योग एवं विज्ञान, इन सबों का

---

१ मा० ७·७८ (क)—७·७९(क) १—

"रामचन्द्र के भजन बिनु जो यह पद निर्वान।
ग्यानवंत अपि सो नर पसु बिनु पूँछ बिषान॥
राकापति षोड़स उअहिं तारागण समुदाइ।
सकल गिरिन्ह दव लाइअ बिनु रवि राति न जाइ॥
ऐसेहिं हरि बिनु भजन खगेसा। मिटइ न जीवन्ह केर कलेसा॥"

२ मा० ७·८९·५—"निज अनुभव अब कहउँ खगेसा। बिनु हरि भजन न जाहिं कलेसा॥

३ मा० ७·८९ (क) उ०—"गावहिं बेद पुरान सुख कि लहिअ हरिभगति बिनु॥"

४ मा० ७·९०·१—७

५ मा० ७.९०·८—

"कवनिउ सिद्धि की बिनु बिस्वासा। बिनु हरि भजन न भवभय नासा॥"

६ मा० ७·९० (क)

७ मा० ७·९० (ख)—

"अस बिचारि मति धीर तजि कुतर्क संसय सकल।
भजहु राम रघुबीर करुनाकर सुन्दर सुखद॥"

८ मा० ७·९२ (ख)—

"भव वस्य भगवान सुख निधान करुना भवन।
तजि ममता मदमान भजिअ सदा सीता रवन॥"

फल राम के चरणों में प्रेम से ही हैं क्योंकि इसके बिना किसी का कल्याण नहीं हो सकता।[१] यहाँ इसी काग शरीर से मैंने राम की भक्ति पाई है। इसलिए इसमें मुझे बड़ी ममता है।[२] यहाँ सारे शुभ साधनों का फल राम के चरणों में प्रेम ही कहा गया है और उसी से जीवों का कल्याण होना बतलाया गया है। इस उद्‌गार में रामभक्ति की महिमा सर्वोपरि घोषित की गयी है। आगे चलकर इसी प्रसंग में कहा गया है कि जीव का सच्चा स्वार्थ मन, वचन एवं कर्म से राम के चरणों में प्रेम करने में ही है।[३]

कागभुशुण्डि जी, गरुड़ देव से विविध युगों के मोक्ष साधनों का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि कलियुग में योग, यज्ञ एवं ज्ञान इनमें से कोई भी मुक्ति का आधार नहीं है। कलियुग में मुक्ति का एक मात्र साधन राम का गुणगान ही है। अतः जो सब भरोसा छोड़-कर राम का भजन करते हैं और सप्रेम उनके गुणों का गायन करते हैं, निस्संदेह वे ही संसार को पार कर जाते हैं क्योंकि कलियुग में राम नाम का प्रभाव प्रत्यक्ष है।[४] यथार्थतः यदि मनुष्य विश्वास करे तो कलियुग के समान कोई दूसरा युग नहीं है क्योंकि इसमें राम के विमल गुणों का गान कर मनुष्य अनायास संसार को पार कर जाता है।[५]

कागभुशुण्डि गरुड़ से कहते हैं कि भगवान् की माया के दोषगुण बिना उनके भजन के नहीं जा सकते। इसलिए सभी कामनाओं को त्यागकर राम का ही भजन करना चाहिए।[६]

कागभुशुण्डि जब अयोध्या में शूद्र रूप में अवतीर्ण हुए थे और गुरु का अपमान किया था तब शिव को प्रसन्न करने के लिए उनके गुरु ने यह उद्‌गार प्रकट किया था कि हे उमानाथ! जब तक आपके चरणारविन्द का लोग भजन नहीं करते तब तक इस लोक में या परलोक में न तो उन्हें सुख और शान्ति ही मिलती है और न उनके सतोष का ही नाश होता है। इसलिए हे, सभी जीवों में निवास करने वाले स्वामी! मेरे ऊपर कृपा कीजिए।[७] इस उद्‌गार में राम के परम भक्त शिव के भजन का माहात्म्य घोषित किया गया है।

महर्षि लोमश के निर्गुण ब्रह्म का उपदेश करने पर कागभुशुण्डि ने सगुण ब्रह्म राम की भक्ति के लिए हठ किया। लोमश के हृदय में क्रोध हो आया और वे निर्गुण ब्रह्म का

---

१ मा० ७·९५·५—६—
"जप तप मख सम दम ब्रत दाना। बिरति बिबेक जोग बिग्याना॥
सब कर फल रघुपति पद प्रेमा। तेहि बिनु कोउ न पावइ छेमा॥"

२ मा० ७·९५·७; ७·९६·४

३ मा० ७·९६·१—३
"स्वारथ साँच जीव कहुँ एहा। मन क्रम बचन राम पद नेहा॥
सोइ पावन सोइ सुभग सरीरा। जो तनु पाइ भजिअ रघुबीरा॥
राम बिमुख लहि बिधि सम देही। कबि कोबिद न प्रसंसहिं तेही॥"

४ मा० ७·१०२ (ख)—७·१०३·७

५ मा० ७·१०३ (क)

६ मा० ७·१०४ (क)—"हरि माया कृत दोष गुन बिनु हरि भजन न जाहिं।
भजिअ राम तजि काम सब अस बिचारि मन माहिं॥"

७ मा० ७·१०८·१३—१४

ही समर्थन करते रहे। यह देखकर कागभुशुण्डि अपने मन में अनुमान करने लगे कि हरिभक्ति के समान लाभ क्या कुछ और हो सकता है क्योंकि हरि भक्ति की महत्ता तो वेद, सन्त और पुराण भी एक स्वर से वर्णन करते हैं। मनुष्य शरीर को पाकर यदि राम का भजन न करे तो क्या इससे बढ़कर भी कोई हानि हो सकती है ?[1] यहाँ भगवान् की अनुकूलता ही परमोत्तम लाभ कहा गया है और उनसे परांमुखता ही सबसे बड़ी हानि कही गयी है।

कागभुशुण्डि गरुड़ से कह रहे हैं कि मैंने लोमश ऋषि के समक्ष भक्ति पक्ष के लिए हठ किया और महर्षि का अभिशाप पाया किन्तु भजन का प्रताप तो देखिये कि मैंने वह वरदान पाया जो कि मुनियों के लिए भी दुर्लभ है।[2] जो लोग ऐसी भक्ति का भी परित्याग कर केवल ज्ञान के लिए परिश्रम करते हैं, वे मूर्ख घर की कामधेनु छोड़कर दूध के लिए अकवन खोजते फिरते हैं। हे गरुड़ ! भगवान् की भक्ति को त्याग कर जो दूसरे उपाय से सुख चाहते हैं, वे दुष्ट बिना नौका के ही महासागर तैरकर पार करना चाहते हैं। उनका यह कार्य सर्वथा जड़तापूर्ण है।[3]

ज्ञान-दीपक प्रकरण का वर्णन कर कैवल्य मुक्ति का स्वरूप निश्चित कर कागभुशुण्डि गरुड़देव से कहते हैं कि हे गोस्वामी ! कैवल्य पद परम दुर्लभ है। ऐसा ही सन्त, पुराण, वेद और शास्त्र कहते हैं। किन्तु राम का भजन करने से वही मुक्ति न चाहने पर भी जबर्दस्ती मिल जाती है। जैसे करोड़ों उपाय करने पर भी थल के बिना जल नहीं रह सकता, उसी प्रकार हरि-भक्ति को छोड़कर मोक्ष का सुख कहीं अन्यत्र नहीं मिल सकता। यही समझ कर चतुर हरि-भक्त मुक्ति का निरादर करके भक्ति में लुभाये रहते हैं।[4] इसी प्रसंग में कागभुशुण्डि का जोरदार शब्दों में कथन है कि सेवक-सेव्य भाव के बिना संसार के पार नहीं जाया जा सकता। इस सिद्धान्त को समझकर राम के चरण-कमलों का भजन करो।[5] जो चेतन को जड़ और जड़ को चेतन करते हैं, ऐसे समर्थ भगवान् राम का जो भजन करते हैं, वे जीव धन्य हैं।[6]

---

१ मा० ७.११२.८–९—
"लाभु कि किछु हरि भगति समाना। जेहि गावहिं श्रुति सन्त पुराना।।
हानि कि जग एहि सम किछु भाई। भजिअ न रामहि नर तनु पाई।।"

२ मा० ७.११४ (ख)

३ मा० ७.११५.१–४—
"जे असि भगति जानि परिहरहीं। केवल ज्ञान हेतु श्रम करहीं।।
ते जड़ कामधेनु गृह त्यागी। खोजत आकु फिरहिं पय लागी।।
सुनु खगेस हरि भगति बिहाई। जे सुख चाहहिं आन उपाई।।
ते सठ महासिन्धु बिनु तरनी। पैरि पार चाहहिं जड़ करनी।।"

४ मा० ७.११९.३–७

५ मा० ७.११९ (क)—"सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि।
भजहु राम पद पंकज अस सिद्धान्त बिचारि।।"

६ मा० ७.११९ (ख)—"जो चेतन कहँ जड़ करइ जड़हि करइ चैतन्य।
अस समर्थ रघुनायकहि भजहिं जीव ते धन्य।।"

गरुड़देव के प्रश्न करने पर कागभुशुण्डि ने मानस रोगों का विवेचन किया और राम-भक्ति को ही उन रोगों का औषध बतलाते हुए[1] वे कहते हैं कि शिव, ब्रह्मा, शुक, सनकादिक एवं नारद इत्यादि जो मुनि ब्रह्म-विचार-विशारद हैं, सबका मत यही है कि राम के चरण-कमलों में प्रेम कीजिए। श्रुति, पुराण इत्यादि सभी ग्रन्थ कहते हैं कि रामचन्द्र की भक्ति के बिना सुख नहीं मिलता। कछुये की पीठ पर बाल जम जायें तो जम जायें, बन्ध्या का पुत्र बल्कि किसी की हत्या कर दे तो कर दे, आकाश में बहुत तरह के फूल फूलें तो फूल जायें, लेकिन भगवान् के प्रतिकूल होने पर जीव सुख नहीं प्राप्त कर सकते। मृगतृष्णा का पान करने से प्यास बुझे तो बुझे, खरहे के सिर पर सींगें जमे तो जमें बल्कि अन्धकार सूर्य को नष्ट कर दे, किन्तु राम से परांमुख जीव को सुख नहीं मिलता। यदि हिम से अनल प्रकट हो तो हो, किन्तु राम विमुख मनुष्य को सुख नहीं होता। यदि जल के मन्थन से घृत की उत्पत्ति हो जाय तो हो जाय, बालू से तेल निकल जाय तो निकल जाय, किन्तु बिना हरि-भजन के मनुष्य संसार को पार नहीं कर सकता, यह सिद्धान्त अटल है। यदि प्रभु चाहें तो मच्छड़ को ब्रह्मा और ब्रह्मा को मच्छड़ से भी हीन कर सकते हैं। ऐसा सोचकर सन्देह त्यागकर जो राम का भजन करते हैं वे वास्तव में प्रवीण हैं।[2] मैं निश्चित रूप से कहता हूँ और मेरी यह वाणी कदापि असत्य नहीं हो सकती कि जो मनुष्य राम का भजन करते हैं वे अत्यन्त दुस्तर संसार-सागर को पार करते हैं।[3] अनेक असम्भव उदाहरणों के द्वारा इस उद्गार में सशक्त शब्दों में "राम भजन ही एक मात्र मनुष्य का कर्त्तव्य है," इस अटल सिद्धान्त का निरूपण किया गया है।

कागभुशुण्डि गरुड़देव से कहते हैं कि साधक, सिद्ध, विमुक्त, उदासी, कवि, कोविद, कृतज्ञ, संन्यासी, योगी, शूर, तपस्वी, ज्ञानी, धर्मनिरत पण्डित एवं विज्ञानी ये सभी मेरे स्वामी राम की सेवा किये बिना भवसागर पार नहीं कर सकते। ऐसे राम को बारम्बार नमस्कार करता हूँ। उनकी शरण में जाने पर मेरे जैसे पाप के समूह भी शुद्ध हो जाते हैं। इसलिए हे अविनाशी राम! मैं आपको नमस्कार करता हूँ।[4]

शिव का पार्वती से कथन है कि तीर्थाटन, योग, विराग, ज्ञान, कर्म, धर्म, व्रत, दान, संयम, दम, जप, तप, यज्ञ, जीवों पर दया, ब्राह्मण और गुरु की सेवा, विद्या, विनय एवं

---

१ मा० ७.१२१.२८--७.१२२.८

२ मा० ७.१२२.१२--२.१२२ (ख)

३ मा० ७.१२२ (ग)—"विनिश्चितं वदामि ते न अन्यथा वचांसि मे।
हरिं नरा भजन्ति येऽतिदुस्तरं तरन्ति ते ॥"

४ मा० ७.१२४.५--८—"साधक सिद्ध बिमुक्त उदासी। कबि कोविद कृतग्य संन्यासी॥
जोगी सूर सुतापस ग्यानी। धर्म निरत पण्डित ब्रिग्यानी॥
तरहिं न बिनु सेएँ मम स्वामी। राम नमामि नमामि नमामी॥
सरन गएँ मो से अघ रासी। होहिं सुद्ध नमामि अबिनासी॥

विवेक की महत्ता, जहाँ तक वेदों ने धर्म के साधन बतलाये हैं, उन सबों का फल भगवान् की भक्ति ही है।[1]

इसी प्रसंग में शिव ने पार्वती से कहा है कि सर्वज्ञ, गुणी, ज्ञाता, पण्डित, दाता, धर्मपरायण एवं कुल का रक्षक है जिसका मन राम के चरणों में अनुरक्त है। वही नीति निपुण है, वही परम चतुर है, वही भली भाँति वेदों का सिद्धान्त जानता है, वही कवि कोविद एवं रणधीर है जो निश्छल होकर भगवान् राम का भजन करता है।[2] इसी क्रम में आगे शिव कहते हैं कि हे पार्वती वही कुल धन्य है, जगत्पूज्य है, पवित्र है जिसमें रामचन्द्र के चरणों में भक्ति रखने वाला विनीत पुरुष उत्पन्न होता है।[3]

शिवजी आगे चलकर पार्वती से कहते हैं कि इस कलिकाल में योग, जप, तप आदि मुक्ति के दूसरे साधन नहीं हैं। अतः केवल राम का स्मरण कीजिए, उनका गुणगान कीजिए और सदैव उनका गुण-गान सुनिये। जिसका सबसे बड़ा स्वभाव पतितों को पवित्र करना ही है (ऐसी बात सभी वेद, पुराण एवं सन्त कहते हैं) उसका भजन मन की सारी कुटिल-ताओं को त्याग कर कीजिए। भला राम का भजन करने से किसको सद्गति नहीं मिली ? गणिका, अजामिल, व्याध, गीध, गजादि अनेक खल तथा आभीर, यवन, किरात, खस और श्वपच जो पाप की मूर्ति थे; वे सब जिस राम का नाम एक बार भी उच्चारण कर पवित्र हो जाते हैं, मैं उस राम को नमस्कार करता हूँ।[4] भगवान् राम में पतित से पतित पुरुषों को तारने की शक्ति है। इस बात में विश्वास रखकर उनकी भक्ति करना ही मनुष्य का परम धर्म है। इस उद्गार में इसी तथ्य पर बल दिया गया है।

ग्रन्थ का उपसंहार करते हुए तुलसीदास अपने प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभो ! मेरे ऐसा कोई दीन नहीं और आप के ऐसा कोई दीनोद्धारक नहीं। ऐसा सोचकर मेरा संसार का भयानक भय दूर कीजिए।[1] इसके अतिरिक्त जिस प्रकार कामी स्त्री को प्यार करता है और लोभी पैसे को, उसी प्रकार तुम निरन्तर मेरे हृदय को प्रिय लगो।[2] तात्पर्य यह है कि भक्त का हृदय निरन्तर भगवान् में आसक्त रहे तो वह संसार के सारे पापों से बच जायेगा और परमानन्द की प्राप्ति करेगा।

"निष्कर्ष" :

हमने यहाँ जो तुलसी के मानस में अभिव्यक्त अनेक उद्गार उद्धृत किये हैं उनसे

---

१ मा० ७.१२६.४--७—"तीर्थाटन साधन समुदाई। जोग बिराग ग्यान निपुनाई॥
नाना कर्म धर्म ब्रत दाना। संजम दम जप तप मख नाना॥
भूत दया द्विज गुर सेवकाई। बिद्या बिनय बिबेक बड़ाई॥
जहँ लगि साधन बेद बखानी। सब कर फल हरि भगति भवानी॥

२ मा० ७.१२६.१--४

३ मा० ७.१२७

४ मा० ७.१३०.५--१२

५ मा० ७,१३० (क)

६ मा० ७,१३० (ख)

यह स्पष्टतः हृदयंगम किया जा सकता है कि राम की भक्ति उनके हृदय की प्रधान सम्पत्ति थी। मानस के प्रारम्भ में ही उन्होंने कारणों के भी कारण राम नामक परमात्मा के चरणों को भवाम्भोधि के पार जाने की इच्छा रखने वालों के लिए एक मात्र नौका कहा है। इसमें उन्होंने अपने आराध्य देव के रूप एवं गुण का विवेचन तो किया ही है, साथ ही, भक्तों के लिए उसे उन्होंने एक मात्र सहारा बताया है। भक्त के लिए सबसे बड़े आकर्षण का परमोत्तम रूप उनके इस उद्गार में प्राप्त हो जाता है। जीवन-मरण और विविध दुखों से परित्राण के लिए साधन भगवान् राम के चरणों में भक्ति ही है, इसका मंगलमय घोष तुलसी के इस उद्गार में प्राप्त होता है। आगे के उद्गारों में कहीं उन्होंने इतिहास से भक्तों का भगवन्नाम जप से उद्धार होना बताया है तो कहीं भगवान् द्वारा काम, क्रोधादि से भक्त की रक्षा की बात कही है। कहीं यज्ञ, ज्ञान, जप, तप आदि साधनों को भगवद्भक्ति बिना भव-बन्धन से मुक्त कराने में असमर्थ बताया है। किसी उद्गार में उन्होंने सोदाहरण इसे सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि स्वधर्म पालन से पतित प्राणी भी भक्ति के बल से ही पवित्र होता है। कहीं वे यह सिद्ध करते हैं कि राम के प्रेम में तल्लीन होकर मरने में भी परम सौभाग्य है। भगवान् की सतत सेवा से मनुष्य का जीवन सफल हो जाता है और उसकी माता यथार्थतः पुत्रवती बन जाती है। तुलसीदास को इसमें दृढ़ विश्वास है जो सुमित्रा के हृदय के उद्गार से स्पष्ट होता है। तुलसी अपने उद्गारों में बार बार दुहराते हैं कि राम के चरणों में प्रेम सारे पुण्यों का फल है और उसका यही परम परमार्थ है। भगवान् की भक्ति के बिना करोड़ों उपाय करने पर भी स्वप्न में भी सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती। भगवद्भक्ति करने से मनुष्य परमपूज्य एवं पण्डित हो जाते हैं। भगवान् का दर्शन ही अमोघ है। उसको भक्त से बढ़कर कोई भी प्रिय नहीं। वे केवल भक्ति का ही नाता मानते हैं। राम के चरणों में लीन होने वाले उसमें इतना स्वाद पाते हैं कि रमाविलास को वमन की तरह त्याग देते हैं। राम-भक्ति में बाधक सारे ऐवश्र्य जलने के लायक हैं। जो भक्ति नहीं है उसका जीवन सर्वथा निष्फल है। वह अपनी माता के यौवन के लिये कुठार तुल्य है। भक्ति के लिए जाति-पाँति, कुल और धर्म की आवश्यकता नहीं। मानव मात्र भक्त हो सकते हैं। यहाँ तक कि श्वपच, श्वर, यवन तथा किरात भी भक्ति के आश्रय से परम पावन बन जाते हैं। भक्ति के बिना योग साधना भी कुयोग है और ज्ञान भी अज्ञान है। वस्तुतः भक्ति के बिना जीव को त्रिलोक में भी कहीं शरण नहीं मिल सकती। यहाँ तक कि माता ही मृत्यु, पिता ही यमराज अमृत; विष; मित्र; शत्रु तथा वैतरणी; के तुल्य हो जाती हैं। इस माया-मय संसार के बन्धन से मुक्त होने के लिए भगवान् की भक्ति ही सर्वोत्तम साधन है। ज्ञान परम महिमामय है पर उस पर भी माया उसी प्रकार अपना प्रभाव जमा सकती है जिस प्रकार पुरुष पर नारी। किन्तु भक्ति पर माया का प्रभाव उसी प्रकार नहीं पड़ सकता, जिस प्रकार कोई स्त्री अन्य स्त्री पर कामासक्त नहीं हो सकती। संसार की सारी आशाएँ व्यर्थ हैं, केवल भगवान् का भजन ही एकमात्र सत्य है। उद्धृत उद्गारों से अभिव्यक्त इन भावों का उल्लेख यहाँ इसलिये किया जा रहा है कि भगवद्गीता के समान ही इस ग्रन्थ में भी ये उद्गार कवि के उद्देश्य को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त हैं। गीता में जिस प्रकार निष्काम कर्मयोग की महिमा गायी गयी है, उसी प्रकार रामचरित मानस में भक्ति की। लोकमान्य तिलक ने यदि गीता को कर्मयोग शास्त्र माना है तो हमें तुलसी के उद्गारों को देखते हुए उसे भक्तियोग शास्त्र ही मानना पड़ता है। प्रस्तुत परिच्छेद में मानस के कतिपय भक्त्यात्मक उद्गारों का विवेचन इसी तथ्य के स्पष्टीकरण के लिए किया गया है।